हरिहरदत्त मिश्र

सफर का साथी

मूल्य : ₹20

Scanned with CamScanner

सफर का साथी

हरिहर दत्त मिश्र

एम.ए. (इंग्लिश)

Scanned with CamScanner

मूल्य : बीस ₹ (20.00)

प्रथम संस्करण 2010

प्रतियां : 1000

© हरिहर दत्त मिश्र

मुद्रक एवं प्रकाशक :
आशीष ऑफसेट
जीवन ज्योति कॉलोनी
गली नं. 2, सतना (म.प्र.)

साजसज्जा :
आशीष खरे
एस.ए./22, गोपाल कॉलोनी
सतना (म.प्र.)

पुस्तक मिलने का पता :

एच.डी. मिश्र
'हरि निकेतन'
रामाकृष्णा 'बचपन' स्कूल के पास
भरहुत नगर कॉलोनी, सतना (म.प्र.)

Scanned with CamScanner

"सफर का साथी"

मेरे पिता

स्व. रामगोपाल मिश्र

को

सादर समर्पित

Scanned with CamScanner

लेखक की कलम से...

जन्म से जीवन का सफर प्रारम्भ हो जाता है। इस यात्रा में प्रकृति के वरदान पवन, प्रकाश, ऊष्मा, जल व मिट्टी के साथ ही विस्तृत हरीतिमा, पशु, विहंग एवं विभिन्न जलतन्तु हमारे अभिन्न मित्र होते हैं। हमारी जीवन यात्रा में हमारे ये साथी न हों तो हमारा जीना ही दुष्कर हो जायेगा। इन साथियों के अलावा मानव समाज भी जीने में हमारी मदद करता है। माता, पिता, भाई, बहन, रिश्तेदार, पत्नी व बच्चे हमारे इस सफर को आनंददायक बना देते हैं। हमारे मित्र एवं पड़ोस से लेकर हमारे चतुर्दिक फैला मानव समाज हमारी भौतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। ये सब हमारे सफर के साथी हैं।

इस यात्रा के दौरान समाज में हम दो काम करते हैं (i) हम लेते हैं (ii) हम देते हैं। इस लेन-देन में साम्यावस्था हो तो जीवन में शान्ति रहती है। इसमें असंतुलन हो तो जीवन में अशान्ति रहती है। बाल्यावस्था में हम मुफ्त लेते हैं। जवानी में हम देते हैं और वृद्धावस्था में हम दिया हुआ वसूलते हैं। स्पष्ट है कि वास्तविक दानदाता जवानी होती है। यह बचपन को प्रेम व स्नेहवश देती है। परन्तु बुढ़ापा को कर्तव्यवश मजबूरन या मन मारकर देती है, या नहीं भी देती है। जवानी, युवावस्था या युवक को सबको देना और सिर्फ देना होता है। देने के पूर्व युवक को समाज से प्राप्त भी करना होता है। यदि होगा नहीं, तो देगा कहाँ से। समाज से प्राप्ति में असंतुलन (अर्थात हम जितना देते हैं उतना हमें नही मिलता है।) संघर्ष को जन्म देता है। प्रतिद्वंदिता, हड़ताल, नारेबाजी, धरने से लेकर चोरी, डकैती, कत्ल, राहजनी तक इसी संघर्ष के मूर्तरूप हैं। संघर्ष में एक जीतता है तो दूसरा हारता है। जीत सुख को और हार दुख को जन्म देती है। मैं भी इस संघर्ष से गुजरा हूँ।

बुढ़ापे के संघर्ष के दो रूप हैं 'बचाओ और वसूलो'। अर्थात जो जमा पूँजी है उसे छिनने से बचाओ और जो जवानी में दूसरों को दिया है उसे वसूलो।' वसूली का यह कार्य आशा व निराशा का जनक है। बचाने काकार्य उसे 'कंजूस मक्खीचूस' जैसे संबोधनों से अलंकृत करता है और उसे शारीरिक पीड़ा या मृत्यु भी दे सकता है। जीवन में बुढ़ापे का यह वाक्य प्रजेन्ट कन्टीनुअस टेंस में बनता है।

संघर्षों से अनुभव बनते हैं। संघर्षों से सृष्टि भी बनती है। संघर्ष-प्राकृतिक है। शान्ति-प्रकृति विरुद्ध है। परन्तु शान्ति की इच्छा और उसके लिए प्रयास प्राकृतिक है (यही संघर्ष है) यदि ब्रह्माण्ड गतिहीन होकर शान्त हो जायेगा तो सिर्फ शून्य शेष रहेगा।

Scanned with CamScanner

बचपन अत्यन्त मीठा और सुखदायक होता है 'ठुमुकि चलत रामचंद्र बाजत पैजनियाँ' और 'मैंया कबहुँ बढ़ेगी चोटी'' हर मायूस चेहरे में मुस्कान ला देते हैं। बचपन स्वयं भी भोला और मधुर तथा निर्दोष होता है और वह दूसरों को भी आल्हादित कर देता है।

हर कोई इन स्थितियों से गुजरता है, संघर्षों को झेलता है। अतः समग्रता में सबकी भावनायें व सुख दुख एक समान होते हैं (बचपन, जवानी व बुढ़ापा में)।

मेरी पुस्तक में रचनायें आत्मकथा नहीं हैं। 'मैं' का संबोधन भी लेखक (अर्थात मेरा) का नहीं है। यह एक विशिष्ट अवस्था के लिए प्रथम पुरुष है। अतः इन्हें मेरे निजी जीवन से जोड़कर देखा व पढ़ा जाना नहीं चाहिये। घटनायें, नाम आदि भी काल्पनिक हैं।

मैं नहीं बता सकता कि मेरी यह पुस्तक 'साहित्य' है या नहीं। मैं सिर्फ यह बता सकता हूँ कि इसमें एक प्रकार के सत्य के उद्घाटन का प्रयास मैंने किया है। यह 'आर्ट फॉर आर्ट सेफ' भी नहीं है। यह धार्मिक प्रवचन भी नहीं है। इसमें सामाजिक उत्थान का कोई सूत्र भी नहीं है।

यह तो बस ऐसे कुछ पलों में होने वाले एहसास का लिखित रूप है जो सबके जीवन में कभी न कभी आते हैं। वे पल आते हैं और निकल जाते हैं। एहसास भी चले जाते हैं। अन्य मजबूत लोग उन्हें जीते हुए आगे की राह पकड़ लेते हैं। उनकी जीवन ट्रेन अगले स्टेशन की ओर बढ़ जाती है।

परन्तु मैं कमजोर था अतः आगे न बढ़ सका। मैं उन्हीं पलों में ठहर गया हूँ। कुछ पलों के लिए समय को रोककर मैंने उन्हें लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है।

मैं साहित्य जगत के लिए एक अज्ञात नाम हूँ। मेरी यह प्रथम पुस्तक है। अनगिनत गल्तियाँ की होंगी मैंने इसमें। कृपया मेरी भूलों को मुझे इंगित करने का कष्ट करें। पाठकों से आशीर्वचन का भी मैं आकांक्षी हूँ। आपके स्मित हास्य के लिए कुछ चुटकुले मैंने उद्धृत किये हैं कृपया इनका भी आनंद उठायें। इसमें मुद्रित चित्र आपकी ही कल्पना हैं। अतः शीर्षकरहित हैं। आपकी प्रतिक्रिया मेरे लिये स्वागत योग्य होगी।

- लेखक

Scanned with CamScanner

विषय-सूची

अनु.	विषय	चुटकुला	पृष्ठ
1.	कविता का जन्म	मुस्कान	1
2.	मिट्टी	टैक्स की मुस्कान	5
3.	मादाओं में सबसे ज्यादा गुलाम 'स्त्री'	ललित मुस्कान	9
4.	लोकतंत्र और राजनैतिक भृष्टाचार	मोहक मुस्कान	11
5.	अज्ञान और शान्ति	हर्ष	15
6.	कह कबीर निज घर चलौ जहँ काल न जाही	गवाही	17
7.	मित्रता	चुटकी	20
8.	वोट बैंक	बुद्धि की बात	22
9.	सिस्टम	मुवक्किल	27
10.	मेरा गाँव	हास्य	31
11.	ढलती शाम की शान्ति	शिकार	33
12.	नशा और आनन्द	ज्ञान पर हर्ष	35
13.	जीभ	दूरी की माप	39
14.	अदुनियाँ	वोटों की चालबाजी	41
15.	आजादी क्यों	जज की सलाह	45
16.	वैराग्य	तलाश	49
17.	हाकर	बचत	51
18.	जूनियर रिटायर्ड	समय की कीमत	52
19.	स्वावलोकन	(State) स्टेट का अर्थ	54
20.	भावना का संघ	झोला छाप	56
21.	इन्द्रिय दमन	वकालत	60
22.	सन्यास और आत्महत्या	छेद	64
23.	प्रेम और कलह	स्मित हास्य	67
24.	आज की व्यंग्यात्मक परिभाषायें और प्रश्नोत्तर	स्मित हास्य	71

Scanned with CamScanner

मुस्कान

प्रेमी - ''तुम्हारी आंखें गहरी झील के समान हैं। मैं इनमें हमेशा के लिए डूब जाना चाहता हूँ।''

प्रेमिका - ''होश की बात करो - यह मेरी आंखें हैं। क्लब का स्वीमिंग पूल नहीं।''

कविता का जन्म

''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आंखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।।''

दु:ख में नयनों से बहती अविरल अश्रुधारा चाहे वह मौसम के थपेड़ों को सहती, टूटे खपरैल से टप-टप कर टपकते वारि बिन्दुओं से बिछौने और उसमें सोये अबोध शिशु को बचाने के लिये उनके नीचे बाल्टी लगाने वाली विधवा माँ के नेत्रों से बह रही हो या चाँदकुमारी से प्रेम की चरम परिणति-विवाह में असफल रहने पर गीतों के राजकुमार नीरज की आँखों से निकली हो और कुछ कुछ उदास गीतों की एक लम्बी श्रंखला की रचना के बाद -

''काँपती लौ, ये सियाही, ये धुआँ, ये काजल
अपनी सभी उम्र इन्हें गीत बनाने में कटी।
कौन समझे मेरी आँखों की नमी का मतलब
जिन्दगी वेद थी जिल्द बँधाने में कटी।''

से जिन्दगी को पहचान पाने की सोच तक पहुंचकर वह थम सी गयी हो या फिर वह उमर खैयाम के अन्तर्मन में ही कहीं समा गयी हो और

And here, with a loaf of bread beneath the bough
A book of verse, a flask of wine
And thou beside me singing in the wilderness
And wilderness is paradise enough.

(रूबाइयात उमर खैयाम - फिटजेराल्ड द्वारा अनूदित)

Scanned with CamScanner

के रूप में प्रस्फुटित हुई हो या फिर क्रौंच पक्षियों के संभोगरत जोड़े में से एक को बहेलिया द्वारा मार दिये जानेपर दूसरे के विलाप को सुनकर महाकवि वाल्मीकि की जिह्वा से श्लोकों के रूप में ऐसी निकली हो कि विशाल संस्कृत महाकाव्य रामायण की रचना के बाद ही थमी हो - इस अश्रुधारा ने ही कविताको जन्म दिया है। यही नयनधारा ही कविता है चाहे वह हृदय के अन्दर ही रह गयी हो या फिर शब्दों के रूप में बाहर निकल आयी हो और उसने श्रोता या पाठक के मन में भी वही भाव जागृत कर दिया हो, उसी रस का परिपाक कर दिया हो जो तत्समय किसी कवि के मन में रहा हो।

यह एक श्रंखला है। अभाव से दुःख, दुःख से अश्रु, अश्रु से कविता और कविता से आनंद, आनंद से संतोष, संतोष से जीने की चाहत, जीने की इच्छा से दूसरों को जिलाने की इच्छा। दूसरों को जिलाने के लिए उनसे प्रेम, उनकी सेवा, उनके प्रति समर्पण या उनके दुःख को स्वयं के अन्दर महसूस करने का ऐसा भाव मानों हम स्वयं उसकी पीड़ा से कराह उठे हों और फिर से इस प्रेम को बांटने की चाहत - आनंद को दूसरों को देने की चाह (चैतन्य महाप्रभु जैसी दीवानगी), अन्ततः एक आनंदित समाज की उत्पत्ति। परन्तु कविता तो सिर्फ कविता होती है उसका कोई उद्देश्य नहीं होता वह तो बस सृजित हो जाती है।

परन्तु जब वह आती है तो उक्त श्रंखला स्वयमेव निर्मित हो जाती है समाज स्वयमेव प्रफुल्लित हो जाता है। कविता जब निकलती है, तब ऐसा कोई लक्ष्य कवि के सामने नहीं होता है। यह तो बस 'Art for art sake' होती है। कला-कला के लिये होती है। वह स्वयं में पूर्ण होती है। उसे पूर्णता के लिये आगे कुछ नहीं चाहिये होता है। श्रंखला तो उस कविता की पूर्णता से उत्सृजित सह उत्पाद (By product) होती है। 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' होती है कविता। तभी तो छोटी सी उम्र में ही जॉन कीट्स, जिसने अपने प्रिय भाई टाम को एक क्षय रोग जैसी बीमारी से तिल तिल कर मरते देखा था और जो स्वयं भी अपनी किशोर युवावस्था में उसी बीमारी का शिकार हो गया था तथा काल कवलित हो गया था, सत्य तक पहुंच गया था और उसकी लेखनी से लिख गया था,

"Beauty is truth, truth beauty
That is all, ye know on earth
And all ye need to know"

सत्य, प्रेम, आनंददायिनी यह कविता अभाव, विरह, दुःख से उत्पन्न होती है अतः इसकी सम्पूर्ण रचना में एक उदास सी शाम होती है Pathos के भाव से

Scanned with CamScanner

यह अछूती नहीं रहती है।

क्या यही उदासी, परिलक्षित नहीं होती है इन काव्यांजलियों से -

"दीर्घ तमसा में एकाकार
गूंज उठता है जब मधुमास
विधुर उर के से मृदु उद्गार
कुसुम जब खिल उठते सोच्छ्वास
न जाने तपित तड़ित में कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन ।।"

तथा

"रात है बरसात झर झर
और तुम अभिसार पथ पर
रात थी निद्रा न आई
बार बार उघार द्वार
मैं अंधकार निहार आई
सामने दिखता नहीं कुछ
दूर फैला व्यथित अम्बर"

स्वयं ही उत्पन्न होती है कविता अतः कविता की रचना को पढ़ाया नहीं जा सकता, इसे नियमों में बांधा नहीं जा सकता। हाँ जब यह पैदा हो चुकती है तब समालोचक इसके गुणावगुण पर विचार कर सकते हैं। जो कविता जितना अधिक रस परिपाक करती है वह उतनी ही ज्यादा सुन्दर होती है।

कविता सुप्त भावों को जागृत करती है। तभी तो युद्ध में जाने वाले वीर बांकुरों के साथ भाट और चारण भी चला करते थे जो अपनी कविताओं से योद्धाओं में जोश का संचार करते थे। कहते हैं महोबा के आल्हा उद्दल बड़े वीर योद्धा थे। उनकी वीरता की कहानियों पर रचित आल्हखंड विशेष रूप से बुन्देलखंड में आज भी बहुत गाया जाता है। जब आल्हा गाने वाला सैरवार ढोलक की थाप पर आल्हा गाता है तो कायरों की भी बाहें फड़क उठती हैं। ऐसी ही एक आल्हा की महफिल में जब सैरवार ने ढोलक की थाप पर यह गाया -

'जाके सम्मुख बैरी बैठे ताके जीवन को धिक्कार'

तो उस महफिल में दो दुश्मनों ने एक दूसरे की गर्दन काट दी। इस घटना पर हमीरपुर जिले के कलेक्टर को वहाँ आल्हा गाने पर प्रतिबंध लगाना पड़ा था।

कवि सम्मेलनों में जब श्रोता समाज रसमय हो उठता है तो कविता की

Scanned with CamScanner

पंक्तियों पर तालियां स्वयं ही बज उठती हैं। उन्हें बजाना नहीं पड़ता है। आजादी के दीवाने 'वन्दे मातरम' का उद्घोष करते हुये, कभी सूर्यास्त न होने वाले विशाल अंग्रेजी साम्राज्य को चुनौती देते हुये प्रसन्नता पूर्वक फाँसी के फंदे को स्वयं ही अपने गले में डालकर फाँसी पर झूल जाते थे तो फाँसी देने वाले जल्लाद की भी आँखें नम हो जाती थीं।

ऐसी है यह कविता जो गाँधी के सम्पूर्ण चरित्र का वर्णन मात्र दो पंक्तियों में कर देती है।

"उठ गया जिधर भी एक हाथ
उठ गये कोटि कर उसी ओर
उठ गयी जिधर भी एक दृष्टि
उठ गये कोटि दृग उसी ओर"

यह कविता ही है जो रोते को हंसा देती है, हंसते को रुला देती है, आलसी को कर्मठ बना देती है और कर्मठ को समुद्र के तट पर बैठाकर उछलती तरंगों पर दृष्टिपात करते हुये उसे कुछ पल विश्राम शांति और आनंद के दे देती है।

कविता वही है जो रस की जननी है, रसदायिनी है, और यह पैदा होती है कवि के विरहाश्रु से, उसके अभाव से, उसके दुःख से।

✦✦✦

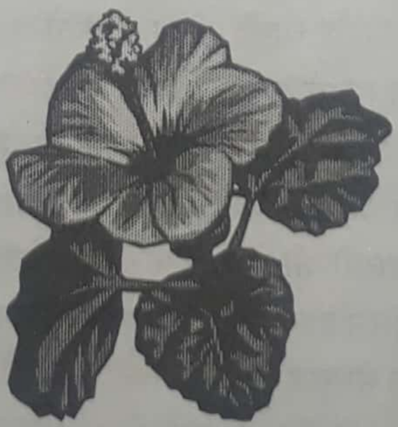

टैक्स की मुस्कान

अर्थशास्त्र का प्रोफेसर - ''अप्रत्यक्ष कर का कोई उदाहरण दो।
विद्यार्थी - ''कुत्ता टैक्स, सर।''
प्रोफेसर - ''कैसे?''
विद्यार्थी - ''कुत्ते को यह टैक्स नहीं देना पड़ता।''

मिट्टी

अपने देश की मिट्टी बड़ी प्यारी होती है। इसे वह ज्यादा गहराई से अनुभव कर सकता है जिससे यह मिट्टी छूट जाती है। उसके अन्दर इस मिट्टी के लिये प्रेम और गहरा हो जाता है जो परदेश चला जाता है, दुबई, कनाडा या इंग्लैंड में जा कर बस जाता है। कहते हैं कि अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर को जब अँग्रेज कैद करके दिल्ली से रंगून (म्यांमार) ले जाने लगे तो उन्होंने अपनी सबसे प्यारी चीज के रूप में अपने देश की मिट्टी की छोटी सी पोटली बाँध ली और उसे अपने साथ ले गये। पता नहीं फिर यह मिट्टी देखने, छूने को मिले न मिले। इतनी प्यारी होती है यह मिट्टी।

मैं एक बच्चा हूँ घर में सभी मुझे शुभ कहते हैं। मैं भी मिट्टी से प्यार करता हूँ परंतु अपने घर के छोटे से बगीचे की मिट्टी से। मैं किसी की जेब नहीं काटता, किसी को ठगता नहीं हूँ, किसी को मारता नहीं हूँ, किसी की रोटी नहीं छीनता। मैं पकवान नहीं मांगता, मैं दूध भी नहीं चाहता। मैं तो बस एक चुटकी मिट्टी चाहता हूँ क्योंकि यह मुझे बहुत अच्छी लगती है। कितनी सोंधी खुशबू होती है इसकी। अहा: मैं तो सोच कर ही मस्त हो जाता हूँ। लटक पड़ता हूँ, मचल पड़ता हूँ, जल्दी से फिसल कर इस मिट्टी को छू लेना चाहता हूँ, अपने छोटे-छोटे हाथों की पतली छोटी अंगुलियों से एक किरका मिट्टी का लेकर अपने मुख में खाना चाहता हूँ। मुझे इसके पहले व बाद में कुछ नहीं चाहिए। मैं पहले सूप और खाने के बाद काफी की चुस्कियाँ नहीं लेना चाहता हूँ। मैं तो बस थोड़ी सी मिट्टी और सिर्फ मिट्टी ही खाना चाहता हूँ। परंतु पता नहीं क्यों सब मेरे दुश्मन बने रहते हैं। मैंने जरा सी मिट्टी कुरेदा

नहीं कि जिसने भी देखा वही चिल्लाने लगता है - अरे, देखो शुभ मिट्टी खा रहा है, छी-नहीं खाते। थू-जल्दी से निकालो। और फिर धीरे-धीरे मेरे पास चली आती हुई मेरी माँ मुझे किसी राक्षस से कम नहीं लगती। मैं जानता हूँ वह आकर मेरे मुख में उंगली डाल देगी और मेरी अधखाई, अधगीली, लसलसी मिट्टी को बाहर को सरकाने लगेगी। मुझे डॉटती भी जायेगी। उसे मुझ पर बिल्कुल दया नहीं आयेगी। मैं यह भी जानता हूँ कि मैं उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाऊँगा, उसे रोक भी नहीं पाऊँगा क्योंकि मैं अभी बहुत छोटा हूँ। मात्र चौदह माह का ही तो हूँ मैं। इसीलिए उसे आता देख मैं जल्दी-जल्दी मिट्टी खाने लगता हूँ जिससे उसके पास में आने तक मैं अधिक से अधिक मिट्टी खा सकूं। फिर तो वही होना है जो हमेशा होता है। वह मेरे मुख से मिट्टी निकालेगी। मैं रोऊँगा, क्रंदन करूंगा, सिसकूंगा, तड़पूंगा और उसकी आँखों में देखूंगा शायद मेरे सिसकने से उसके अन्दर रहम का भाव पैदा हो गया हो। परंतु नहीं - उसके अन्दर दया का कोई भाव पैदा नहीं हुआ।

मैं सोचता हूँ क्या आजकल दया रह ही नहीं गयी है दुनियाँ में। मनुष्य इतना निर्दयी क्यों हो गया है? कोई किसी पर दया नहीं करता। कोई किसी से सहानुभूति नहीं रखता। कोई किसी से प्रेम नहीं करता। ऐसे समाज में भला मैं रहम की आशा कैसे कर सकता हूँ।

मैं फिर सोचता हूँ, मैं तो किसी को नहीं रोकता, फिर लोग मुझे क्यों रोकते हैं मिट्टी खाने से। बाबा कड़वी तम्बाकू खाते हैं। मैं देखता हूँ, जानता हूँ कि गंदी चीज है फिर भी कुछ नहीं बोलता।

मेरी दादी कहती हैं मैं चावल नहीं खाती, मैं तला भुना नहीं खाती। परंतु मैं जानता हूँ कि डाइनिंग टेबिल पर वह सब कुछ खाती हैं, कुछ नहीं छोड़ती हैं परन्तु मैं कुछ नहीं बोलता। पापा और मम्मी जरूर ऐसा कुछ खाते होंगे जो मैं नहीं जानता हूँ। इसीलिये कुछ नहीं बोलता हूँ। और जोजो - वह काला कुत्ता - पूँछ हिलाता - कितनी गन्दी जगह पर लोट जाता है फिर भी मैं कुछ नहीं कहता हूँ। फिर लोग मुझे क्यों रोकते हैं मिट्टी खाने से?

वे बड़े नादान है। वे नहीं जानते कि मुझे मिट्टी से प्यार क्यों है। क्यों मुझे मिट्टी अपने पास बुलाती है। मैं बताता हूं कि मिट्टी ने मुझे क्या दिया है। मिट्टी मेरी पहली शिक्षक है, वह मेरी प्रथम गुरु है। जीवन का पहला पाठ मैंने उसी से सीखा है। मैं तो ब्लैंक माइन्ड था, भोला था, नादान था। सीधा, सरल और निष्कपट था मैं। मैं सबसे प्रेम करता था। मैं सब पर विश्वास करता था। मैं सबको देखते ही मुस्कुरा देता था। बड़ी निश्छल मुस्कान थी मेरी। बिल्कुल वैसा ही था मैं जैसा ईसा मसीह ने कभी

Scanned with CamScanner

कहा था, जैसा गीता और रामायण ने हमें सिखाया है। यदि भगवान को पाना है तो दरिद्रनारायण से प्रेम करो, प्राणि मात्र को सुख दो। इन्द्रिय दमन करो और त्याग करो। आचार्य रजनीश ने भी इसी प्रकार की शिक्षा दी थी कि आध्यात्म के संसार में प्रवेश करने से पहले अपने मस्तिष्क में भरे हुए सारे राग द्वेषों को निकाल फेंको। इन्द्रिय सुख से इतना तृप्त हो जाओ कि इस सुख से वैराग्य हो जाये। जब मस्तिष्क खाली हो जायेगा तब आध्यात्म की दुनियाँ उसमें भर सकेगी। ऐसा ही था मैं, आध्यात्मिक दुनियाँ के लिए बिल्कुल उपयुक्त - ब्लैंक माइन्ड।

परन्तु जीवन की डगर में चलते-चलते मुझे मिट्टी मिल गई और उसकी सोंधी महक ने मेरा मन मोह लिया। उसके सुस्वाद ने मेरे अन्दर खाने की लालसा जागृत कर दी। एक बार खाया तो दुबारा खाने के लिए उसके संग्रह की इच्छा ने जन्म ले लिया। मुझसे मेरी मिट्टी छीनने वाली माँ को मैंने बरगलाया। मैंने उसका ध्यान बंटाने के लिए आकाश की ओर उंगली उठाकर उसे ''क्रो'' (कौआ) दिखाया। अपनी छोटी सी कीक से मैंने उसे ''बर्ड'' देखने को भी कहा। जब मैंने देखा कि उसका ध्यान तो मेरी मिट्टी की ही ओर है तो मैंने उसकी चापलूसी भी की। मैं मुस्कुराया और 'छी' कहते हुए खाई हुई मिट्टी स्वयं ही मुख से बाहर थूँकने लगा। परन्तु जब मेरी माँ अन्दर से आल्हादित होते हुए भी ऊपर से मेरे प्रति क्रोध ही दर्शाने लगी, मुझे डॉटने लगी, मुझसे मेरी प्यारी मिट्टी छीनने लगी और मुझे गोद में उठाकर उससे दूर ले जाने लगी तो मेरे धैर्य का बांध टूट गया और पहली बार मेरे अन्दर विद्रोह पैदा हुआ। मैंने उसकी इस हरकत का भरपूर विरोध किया। खूब हाथ पॉव मारे। खूब गर्दन दायें बायें, ऊपर नीचे को झटक कर रोते हुए, मचलते हुए मैंने उसकी गोद से उतरने का प्रयास किया। परन्तु निर्बल था मैं। मैं उससे जीत नहीं सका। और जब उसने मुझे वहाँ से दूर कर दिया तो मेरा रुदन सिसकियों में बदल गया। रोने में तो कुछ नाटकीयता भी होती है, आँसू तो ग्लीसरीन लगाकर भी आ जाते हैं परन्तु सिसकी निश्छल होती है। यह अन्तरात्मा से निकली आह होती है जो बड़ों-बड़ों का भी सीना चीर कर रख देती है। आज कई तरह की पीड़ाओं को झेलती हुई जनता जब सिसकती है तो ऐसा तूफान उठता है कि चन्द ताकतवर दमनकारी उसके समक्ष टिक नहीं पाते। बड़ी ताकत होती है सिसकी में। मेरी सिसकी सुनकर बाबा दादी का प्यार उमड़ पड़ता है और वे मेरा पक्ष समर्थन करने लगते हैं। मेरी आशा फिर जागृत हो जाती है।

ऐसी है मेरी मिट्टी। इसने मेरी इन्द्रिय को जागृत किया है। सीधेपन से हटाकर मुझे चालाकी सिखाई है। चापलूसी की शिक्षा दी है और सिखाया है विद्रोह करना।

Scanned with CamScanner

पहली बार मोह भी उत्पन्न हुआ है मेरे अन्दर। अविश्वास और घृणा के बीज भी अंकुरित किये हैं मेरे अन्दर इस मिट्टी ने। अब मैं मिट्टी खाने के नये-नये तरीके खोजने लगा हूँ। खोजी प्रकृति हो गई है मेरी। मैं फर्श की दरारों से निकालकर सीमेन्ट के टुकड़े खाने लगा हूँ। दीवारों पर कलई की पुताई की सूखी पपड़ियाँ नोचकर खा जाता हूँ। अगरबत्ती की राख भी खा लेता हूँ मैं। मिट्टी नहीं तो और कुछ ढूढूंगा ही मैं। एक दिन मेरी दादी अपना खड़िया चन्दन ढूंढ़ते- ढूंढ़ते परेशान थीं। मैं चुप था क्योंकि उनका चन्दन तो मैं उदरस्थ कर गया था। पापा की बोर्ड पर लिखने की चाक भी मैं चट कर जाता हूँ। बगीचा मुझसे दूर कर दिया गया तो क्या हुआ? 'तू डाल-डाल मैं पात-पात'। मैं चप्पलों और जूतों के सोल में लगी मिट्टी, सूखा कीचड़ और बालू कुरेद कर खा जाता हूँ। टायर के पास खेलता हुआ चला जाता हूँ और उसकी लकीरों में फंसे बालू के कण निकाल कर खा लेता हूँ। कोई जान भी नहीं पाता। लोग सोचते हैं कि मैं लेटा हूँ और खेल रहा हूँ।

मिट्टी ने मुझे छोटे से बड़ा कर दिया है और अब मैं भोला भाला, निश्छल मुस्कान वाला बच्चा नहीं रहा। मैं संसार में अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ सकने में अब सक्षम हो गया हूँ। इसी मिट्टी ने मेरा शरीर बनाया है, इसी ने मुझे सब कुछ दिया है। इसीलिये इस मिट्टी से मुझे बहुत प्यार है।

✦✦✦

ललित मुस्कान

फिल्म बहुत रोमांटिक थी। उसकी समाप्ति के बाद पत्नी ने पति से कहा - ''तुम मुझे अब उस तरह से प्रेम क्यों नहीं करते, जैसे फिल्म का हीरो हीरोइन से करता है?''

पति ने गुरकिर कहा - ''मालूम है, उसे ऐसा प्रेम करने के लिए कितना पैसा मिलता है?''

मादाओं में सबसे ज्यादा गुलाम 'स्त्री'

स्त्रियों की आजादी की बहुत बातें होती हैं, बहुतेरा रुपया बहाया जाता है। दूरदर्शन और आकाशवाणी में नित नये सीरियल दिखाये जाते हैं जिनमें स्त्री को अपनी चिन्ता स्वयं करते हुए, अपनी आजीविका स्वयं जुटाते हुए, अपने निर्णय स्वयं लेते हुए दिखाया जाता है। वह पुरुष से दोस्ताना ताल्लुकात रखने की बात कहती है और 'यार' जैसा संबोधन आपस में किया जाता है। उसे शराब पीते दिखाया जाता है, पुरुष को पछाड़ते दिखाया जाता है। स्त्रियों में से कुछेक को उठाकर सरकार में किसी पद पर बिठा दिया जाता है। अन्य पुरुषों की तरह संसद में जोर-जोर से चिल्लाकर वह अपनी बात कहती है। बंगाल की एक जन प्रतिनिधि की तरह वह झूमा-झटकी भी करती है उसे घसीटा व झिकझोड़े जाने पर वह फिर उठकर खड़ी हो जाती है और हार न मानते हुए फिर अपनी बात की रट लगाना शुरू कर देती है, जैसा कि पुरुष करते हैं।

हमारे देश की कुछ स्त्रियों के पास समझ है अत: वे इन सबको देख सुनकर अपने अंदर एक चेतना का अनुभव करती हैं। कुछ ऊर्जा ग्रहण कर लेती हैं और अपने एक मात्र हिटलर, तानाशाह अपने पति से लड़ने को तैयार हो जाती हैं। क्या नारी स्वतंत्रता इसी प्रकार समाज में आयेगी? शायद बहुत समय लगेगा, और नारी कम्प्यूटर युग में बहुत पीछे घिसटते हुए चलेगी एवं वह हमेशा गुलामी की तस्वीर पेश करती रहेगी।

जानवरों में कोई मादा इतनी गुलाम नहीं होती जितनी कि स्त्री। शेरनी, बिल्ली क्या शेर व बिल्ले की गुलाम होती हैं! नहीं! वास्तव में पुरुष ने एक लम्बे समय

Scanned with CamScanner

में चरणबद्ध रूप से स्त्री को गुलाम बनाया है और इस प्रक्रिया में सबसे बड़ा योगदान दिया है एक वाक्य ने - ''स्त्री घर के अन्दर की मालिक है और पुरुष घर के बाहर का।'' बस बच्ची से लड़की फिर ललना फिर कामिनी - स्त्री बनने के चरणों में यह भावना उसी प्रकार भरी रहती है जैसे प्राण के साथ सांसें। हम अपनी लड़की को खेलने जाने देते हैं, उसे पढ़ाते हैं, भाषण करने देते हैं, नृत्य सिखाते हैं, एन.सी.सी. की परेड करवाते हैं परन्तु क्या हम इस भावना से मुक्त हो पाते हैं? हर क्षण हमें इसका एहसास रहता है कि यह सब करके हम लड़की पर एहसान कर रहे हैं। उसे कुछ समय ऐसा दे रहे हैं जिसमें वह अपनी आजादी का उपभोग कर सके। हम या लड़की दोनों ही जानते हैं कि शादी के बाद उसे एक ही काम करना है। घर को सजाना है, रोटी बनाना है, कपड़े धोना है। घर के हर सदस्य की इच्छाओं का ध्यान रखते हुए उनके निश्चित समय में उन्हें दवाई, दूध, चाय व खाना देना है। उनके कपड़ों को घरी कर रखना है और पलक पांवड़े बिछाकर पति महोदय का दरवाजे पर इंतजार करना है।

पहले मैं सोचा करता था कि ये पार्क क्यों बनाये जाते हैं! स्त्री-पुरुष क्यों शाम को साथ-साथ टहलने निकलते हैं! इतवार का एक दिन क्यों आता है! अब लगता है, यह बहुत जरूरी है - विशेषकर स्त्री के लिये। उसे इन्ही में कुछ देर के लिए काम से आराम मिलता है, शुद्ध ताजी वायु मिलती है और मिलती है बाहर की दुनियाँ-घर के बाहर का संसार। यदि ये पार्क न होते और इतवार न होता तो स्त्री अपने घर संसार में... तिल-तिल कर घुटती रहती और आकाशवाणी और दूरदर्शन अपने कार्यक्रमों में स्त्री की आजादी पर चीखते रहते। परन्तु यह इलाज नहीं है स्त्री की गुलामी का।

यदि मुझसे पूछा जाए तो मैं एक ही उपाय बताऊंगा स्त्री की आजादी का। और वह है ''चूल्हा स्त्री की आजादी का दुश्मन है।'' स्त्री अपने आपको चूल्हे से जिस दिन मुक्त कर लेगी उस दिन वह पुरुष से आजाद हो सकेगी। स्त्री स्वतंत्रता के पक्षधर जिस दिन स्त्री का संबंध खाना पकाने के कार्य से तोड़ने में सफल हो जायेंगे उस दिन वे उसे आजाद कर लेंगे। इस कार्य में स्त्री को लगभग 7 घंटे का समय लगता है। यह समय वह बाहरी दुनिया में बिताने के लिए निकाल लेगी। मुश्किल नहीं है यह। हर मोहल्ले में अनिवार्य होटल बनाये जांय जहां शिशु दूध से लेकर रोटी नाश्ता व खाना मिले। फिर देखिए नजारा। कैसा होगा वह जमाना!

तब स्त्री, पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलेगी एवं समाज के उत्थान में अपना योगदान देगी। फिर स्त्री, पुरुष की तरह ही स्वतन्त्र होगी।

◆◆◆

Scanned with CamScanner

मोहक मुस्कान

नेता जी माइक पकड़े धारा प्रवाह भाषण दे रहे थे।
परन्तु नीचे जनता के रूप में सिर्फ एक व्यक्ति मौजूद था। शेष मैदान खाली पड़ा था। जब नेता जी को भाषण देते हुये 2 घंटे हो गये तो बगल में बैठे उनके साथी ने धीरे से कहा :- ''नेता जी, जनता के नाम पर तो सिर्फ एक ही आदमी बैठा है''
नेता जी बोले :- ''यदि तुम्हारे पास दस भैंसें हों और किसी दिन एक ही भैंस घर आये, तो क्या उसको खाना नहीं दिया जायेगा।''
साथी ने कहा :- ''परन्तु 10 भैंसों का खाना एक ही भैंस को तो नहीं डाल दिया जायेगा।''

लोकतंत्र और राजनैतिक भृष्टाचार

यदि इस विषय पर अरुण शोरी या खुशवंत सिंह कुछ कहते या लिखते तो उसको सब जगह मान्यता मिल जाती, बात का वजन बढ़ जाता। परन्तु चूंकि मैं एक साधारण गुमनाम व्यक्ति हूँ और इसे लिख रहा हूँ इसलिए इसे शायद तवज्जो नहीं दी जायेगी। फिर भी सत्य तो सत्य ही रहेगा चाहे उसका उद्घाटन कोई भी करे । हां, लोगों द्वारा उसे स्वीकार किये जाने में समय अवश्य लग जायेगा। सत्य यह है कि लोकतंत्र में सरकारों की स्थिरता के लिये तथा व्यक्ति की शक्ति बढ़ाने के लिये तथाकथित राजनैतिक भृष्टाचार अत्यावश्यक है। आगे मैं इस सत्य और अपनी बात की पुष्टि कर रहा हूँ।

लोकतंत्र क्या है? यह है, जनता के राज्य की एक पद्धति। राज्य का बहुसंख्यक समाज जिन व्यक्तियों को चुने, जिन्हें पसंद करे, जिनकी नीतियां उसे अच्छी लगें, उन्हें वह ऊपर लाये और आदेश दे कि वे उन नीतियो का क्रियान्वयन करें जिनको उन्होंने चुनाव के समय उनके समक्ष रखा था और जिन नीतियों को उस बहुसंख्यक समाज ने पसंद किया था। कौन सी नीतियां, कौन सी रीतियां बहुसंख्यक समाज पसंद करता है? एक उदाहरण से स्पष्ट होगी यह बात। मान लीजिए, किसी राज्य की पूरी जनता शराब पीती है, तो वह नहीं चाहेगी कि कोई उनके राज्य में मद्य

Scanned with CamScanner

निषेध लागू करे, चाहे शराब में लाख बुराई क्यों न हों। किसी राज्य की जनता बिल्कुल पाक साफ है और ईश्वरीय नैसर्गिक नियमों का पालन करती है, वह प्रेम से रहती है। किसी का हक कोई नहीं मारता है। किसी का धन व स्त्री कोई हरण नहीं करता है। किसी की उन्नति में कोई बाधा नहीं बनता है। सब अपना खेत जोतते हैं, अपने मिलों में काम करते हैं। प्रबंधक अपनी संगठन क्षमताओं से राज्य के विकास में योगदान करते हैं। सबको पानी, कपड़ा, संचार सुविधा, दवाई और मौसमी थपेड़ों से बचने के साधन उपलब्ध हैं। ये सुलभ हैं, सरल हैं तो जनता सरल होगी, धार्मिक होगी, पाक होगी। ऐसी जनता अपने में से अच्छे व्यक्तियों को चुनेगी। ये व्यक्ति जनता के बीच रहने वाले उन चंद पापियों को दंडित करेंगे जो गलत हैं, कपटी है, धूर्त हैं एवं प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कार्य करते हैं। ये व्यक्ति इस हेतु कानून बना लेंगे। वे अच्छे नेता होंगे।

अत: किसी राज्य के राजनेताओं के बारे में कुछ कहने के पहले, उन्हें दंडित करने से पहले यह देखना आवश्यक है कि उस राज्य की जनता किस श्रेणी की है। किसी राज्य का कानून थोड़ा अच्छा तो हो सकता है, परन्तु बहुत अच्छा या बिल्कुल आदर्शवादी नहीं। शराबी राज्य के कानून में कोई एक दिन ''सूखा'' दिन या ड्राई डे तो हो सकता है परन्तु वहां मद्य निषेध लागू नहीं किया जा सकता है। जनता ऐसा कानून लाने वाले व्यक्ति को चुनेगी ही नहीं। स्पष्ट है कि लोकतंत्र में आदर्शवादी कभी शासन नहीं करेगा। यदि किसी शराबी राज्य को शराब से मुक्ति दिलानी है तो इसके लिए सामाजिक क्रांति करनी होगी। कानून यह काम नहीं कर सकता है। अब यदि शराबी राज्य के कानून इम्पोर्टेड हों या बाहर से आयात किए गये हों तो जनता के साथ कानूनों का तालमेल कैसा होगा? कल्पना करिये किसी राज्य की जनता शरबत पीती है क्योंकि वहां गरमी पड़ती है, किसी राज्य की जनता शराब पीती है क्योंकि वहां ठंड पड़ती है, किसी रेगिस्तानी राज्य की जनता पशु आहार करती है क्योंकि वहां बुद्धे पशुओं के खाने के लिए प्रचुर चारा नहीं है। इन भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न कानून होंगे।

विचार करें कि किसी हरे भरे, समशीतोष्ण जलवायु वाले, प्राकृतिक प्रकोपों से विहीन एक शांत राज्य के लिए साथ ही ऐसे राज्य के लिए जो एक हजार वर्षों से गुलाम रहा हो, जिस राज्य को हुक्म मानने की आदत, शोषण सहने की आदत पीढ़ी दर पीढ़ी पड़ गयी हो, ऐसे राज्य के लिए जहां सामाजिक चेतना तो आई हो परन्तु समग्र रूप में नहीं- कानून कैसे होंगे? कैसे कानून होने चाहिए? वहां की जनता कैसी होगी? वह कैसे लोग चुनेगी और वे लोग कैसा काम करेंगे?

Scanned with CamScanner

इन सबके उत्तर बहुत आसान हैं। उस राज्य में चुने हुये लोग वही काम करेंगे जो वहां की जनता चाहेगी। उस राज्य का इम्पोर्टेड कानून, भृष्टाचार जैसे इम्पोर्टेड शब्द, कुछ भी हों, आदर्शवादी कानून कुछ भी कहता हो। यदि उस आदर्शवादी कानून में बदलाव लाना उन चुनिंदा लोगों के वश में नहीं होगा तो फिर वे कानून से परे हटकर पहले वे काम करेंगे जो जनता चाहेगी और जो कार्य उस माहौल में उनकी शक्ति बढ़ाने में सहायक होगा।

ज्यादा कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है सिर्फ यह समझ लेना आवश्यक है कि जनता अपने नेता को दंडित करने के पहले अपने आपको दंडित करे। अच्छे-अच्छे नेताओं को जनता बिगाड़ देती है। दोष जनता का है, नेताओं का नहीं। नेता अपने नेतृत्व को बरकरार रखने के लिए वही करता है जो जनता चाहती है। यदि कोई एक नेता खराब है तो सरकार बदलने पर या नेता बदलने पर माहौल बदल जाना चाहिए। अंधेरा छंट जाना चाहिए और सुप्रभात का उदय होना चाहिए। परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं होता है। कितनी सरकारें आयीं और चली गयीं। नेता आये और राजनैतिक मृत्यु मर गये। हम उन्हें इम्पोर्टेड कानूनों की कसौटी में कसते रहे, उन्हें निकालते रहे, उन्हें दंडित करते रहे परन्तु कुछ भी नहीं बदला। क्यों? इसलिए कि जनता आदर्श नहीं है। वह अपने बीच में से दुबारा अपना आदमी भेज देती है। यही नहीं यदि उसके बीच में से कोई अच्छा नेता पहुंच भी गया और उसने कुछ करना चाहा तो उसे बम से उड़ा दिया, गोलियों से भून दिया। क्यों? इसलिए कि जनता बुरी है अतः उसे अच्छाई नहीं चाहिए। ढोंगी है जनता। ढोंग चाहती है। हर नेता गांधी या अटल बिहारी नहीं हो सकता है जो जमाने को बदलने की नैतिकता, क्षमता और साहस रखते हों। आम नेता तो जनता के पीछे चलता है और तभी जनता उसके पीछे चलती है। इस भंवर चक्र को तोड़ना आसान नहीं है।

आजकल अखबार भरे रहते हैं, स्कैम्स आर्थिक अपराधों से, भृष्टाचार की खबरों से। मुझे कुछ अजूबा नहीं लगता। मुझे सिर्फ याद आती है एक घटना। लगभग 50 वर्ष पूर्व एक मंत्री जनसम्पर्क दौरे में एक ग्राम पहुंचे। सभा में एक वक्ता ने खड़े होकर जमीन के नामांतरण संबंधी अनियमितता की शिकायत करते हुए अपने ग्राम के पटवारी पर भृष्टाचार का आरोप लगाया और फिर सामने हाथ का इशारा करते हुए उसने कहा, "और वे खड़े हैं पटवारी"। सबको लगा कि पटवारी अब निलम्बित या बरखास्त हो जायेगा। मंत्री जी अन्त में बोलने खड़े हुए। उन्होंने पूछा "कौन है यह पटवारी? कहां से आया है यह?" स्वयं ही उत्तर दिया, "यह हमारा ही लड़का है, हमारे बीच से आया है। इसकी योग्यता को देखकर हमने ही

Scanned with CamScanner

उसे पटवारी बनाया है। अब इसे भृष्ट किसने बनाया है? इसे अनियमितता किसने सिखायी है? यह भी हमने ही इसे सिखायी है। हमने अपना कार्य करवाने के लिए इसकी बेदाग जिन्दगी में कुछ पैसों की मुहर लगायी है, न करने पर इसे मारने की धौंस दिया है, झूठे प्रकरण में फंसाने का चक्र लगाया है। एक कमजोर इंसान माहौल के आगे झुक गया है। मैं देखूंगा और गल्ती होने पर इसे दंडित करूंगा। परन्तु फिर दूसरा पटवारी भी वही करेगा। क्यों? क्योंकि हम बुरे हैं हम भृष्टाचार पसंद हैं। पटवारी बदलने के लिए हमें अपने को बदलना होगा।''

मैं किसी किस्म के गुनाहों का पक्षधर नहीं हूं। मैं मंत्री या अफसरशाही की पैरवी भी नहीं करना चाहता। मैं तो सिर्फ यह कहना चाहता हूं कि आज हमारे यहां का लोकतंत्र जिस दौर से गुजर रहा है वह एक आदर्श लोकतंत्र का दसवां हिस्सा भी नहीं है। परन्तु यहाँ कानून आदर्श लोकतंत्र के हैं। अत: जो हो रहा है वह होना ही चाहिए था। हमें अपने कानूनों की आदर्शवादिता की परख करना चाहिए उन्हें सामयिक बनाना चाहिए। भृष्टाचार की परिभाषा भी तदनुरूप स्वयमेव बदल जायेगी।

✦✦✦

हर्ष

मीना को परेशान देखकर उसकी सहेली गीता ने पूँछा - ''क्या बात है मीना? आज बहुत परेशान दिख रही हो। घर में सब ठीक तो है ना।''

मीना बोली - ''कैसे बताऊँ गीता। मेरे पति को शराब की लत है।''

गीता बोली - ''तुम्हारी शादी को 7 वर्ष हो गये, परन्तु तुमने यह बात मुझे कभी नहीं बताई।''

मीना बोली - ''मैं खुद भी कहाँ जानती थी। वह तो मुझे कल मालूम पड़ा जब वह बिना शराब पिये घर आये।

अज्ञान और शान्ति

अज्ञान में बड़ी शान्ति है। ज्ञान में है अशान्ति, तनाव, लड़ाई, और दुःख। सब जगह - भीतर, बाहर। मनुष्य शान्ति पाने के लिये दूर-बहुत दूर जाना चाहता है। अपनी यथार्थ की सीमित दुनिया से दूर, बहुत दूर, ऐसी जगह जहां मिट्टी के तेल की लाइन न हो, व न हो दूध वाले से झगड़ा और न हो बर्तन वाली बाई के न आने पर झुंझलाई पत्नी की चिड़चिड़ाहट। जहाँ न हो काम की तलाश में जाकर बैरंग लौट आये पुत्र की मायूस निगाहें, और न हों पुत्री की बड़ी-बड़ी बोलती मूक आँखें जो दृष्टिपात पर ही मानों कह रही हों - ''पापा ऐसा घर वर क्यों ढूंढा तुमने मेरे लिये? क्या अपराध था मेरा? इन सबसे उत्पन्न मनुष्य के अन्दर की अशान्ति को बढ़ाता कार्यालय से मिला मेमो भी न हो जहाँ। अशान्ति क्यों है इन सब में? वह इसलिए है क्योंकि मनुष्य को इन सब घटनाओं का ज्ञान होता है। ये घटनायें उसके अन्दर भविष्य के प्रति एक भय का सृजन करती हैं। उसके वर्तमान में उसके द्वारा किये जा रहे कार्य का रस लेने से रोक देती है। और वह ''आज'' का आनन्द नहीं ले पाता है। रही भूत की बात तो ''आज'' ''कल'' की ही तो देन है, उसी की फसल है। मनुष्य सोचता है कि उसने बीते कल में घटनाओं का सही आकलन नहीं किया, शायद उसके अन्दर क्षमता नहीं थी। समझ नहीं थी। उसी का परिणाम है यह आज का दुःख और भविष्य के दुःख का भय जो उसके आज को बिगाड़ रहा है। बस यही सब

उहा-पोह। यह उसके ज्ञान के कारण है। वह अज्ञानी होता, वह पागल होता, तो उसे न भविष्य का भय सताता, न आज का तनाव, और न बीते कल की अदूरदर्शिता। वह सुखी रहता, क्योंकि वह कुछ जानता ही नहीं। परन्तु दुःख तो यही है कि वह ऐसा नहीं है। अल्प ज्ञानी मनुष्यों के समुच्चय का वह भी एक अवयव है, इसीलिये वह दूर जाना चाहता है। कहीं ऐसी जगह जहां चतुर्दिक फैली हुई हरियाली हो, टेढ़ा मेढ़ा बहता कल-कल ध्वनि करता झरना हो, और जहाँ उसके मध्य उभरे एक पत्थर पर बैठ कर वह बहते जल में एक हाथ डालकर पानी को दूर तक उछाल दे, फिर कण-कण बिखरी फुहार को नीचे पानी पर गिरते देखता रहे। पास ही से निकला हिरणों का झुण्ड जहाँ पानी पीता हो। उससे बिना डरे कोई मृग शावक जहाँ उसके समीप आ जावे और वह उसकी आँखों मे आँखें डालकर हरी घास का एक तिनका उसके मुख में दे दे जिसे लरिया कर वह उगल दे और फिर एक उछाल के साथ अपनी माँ के समीप जाकर कहे कि माँ वह पानी वाला मनुष्य अच्छा है। उस जगह भी अस्तित्व की लड़ाई है। परन्तु वह अज्ञानी है। उसे वह दिखाई नहीं देती। वह उस लड़ाई का एक पात्र भी नहीं है। परन्तु वहाँ है अज्ञान का परदा। इसीलिये वहाँ मनुष्य को शान्ति है।

✦✦✦

गवाही

जज - "तुम्हारा कोई साक्षी है।"
अपराधी - "जी हाँ! ईश्वर है।"
जज - "उसको हाजिर करो।"
कर्मचारी (जोर से) - "ईश्वर, हाजिर हो।"

कह कबीर निज घर चलौ जहँ काल न जाही

कबीरदास जी कहते हैं - "चलो, अपने घर चलो, वहाँ चलो जहाँ काल नहीं जाता है।" वहाँ काल यानी समय का प्रभाव नहीं पड़ता है। इस सृष्टि में जितने पिण्ड हैं, जीव हैं, वनस्पतियाँ हैं, वायु और जल है, उन सब पर काल या समय का प्रभाव पड़ता है। काल उन्हें मार डालता है। या समय के व्यतीत होने के साथ-साथ वे पिण्ड, जीव, वनस्पतियाँ पुरानी हो जाती हैं, वे जर्जर और खोखली हो जाती हैं और फिर एक दिन मर जाती हैं। समय उन्हें नष्ट कर देता है।

समय उन्हें कैसे नष्ट करता है? हर पिण्ड, जीव, वनस्पति का एक शरीर होता है। वह अपने शरीर का अस्तित्व बनाये रखने के लिये, अपने स्वरूप को यथावत रखने के लिये पूरा प्रयास करता है। वह अपनी अन्दर की शक्ति से बाहरी बलों को अपने से दूर रखता है। ये बल ब्रह्मांड की गतिशीलता से आते हैं। ब्रह्मांड में हर चीज गतिशील है। सूर्य, चाँद, पृथ्वी, वायु सभी गतिशील हैं। अन्य पिण्डों की यही गतिशीलता अनवरत किसी शरीर या पिण्ड को टक्कर मारती रहती है। वायु उससे टकराती है, बरसात का पानी उस शरीर पर पड़ता है। सूर्य का आतप उसे तपाता है। बाहरी कीटाणु वायु के साथ उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और शरीर के अन्दर के अंगों को विदीर्ण करते हैं। इन सबसे लड़ाई लड़ता हुआ पिण्ड अपने अस्तित्व को बनाये रखता है, परन्तु हर पिण्ड या शरीर की अन्दरूनी शक्ति की एक सीमा होती है। जब बाह्य आक्रमण इतने अधिक होने लगते हैं, कि उस शरीर की शक्ति उन्हें नाकाम नहीं कर पाती है, तो धीरे धीरे उसके अन्दर का Mechanism, उसके अन्दर के अङ्गों का संचालन बाधित होने लगता है, और वे अङ्ग

Scanned with CamScanner

कमजोर होने लगते हैं। फिर बाहरी चमड़ी चिकनी नहीं रह जाती है, उसमें झुर्रियां पड़ जाती हैं क्योंकि उसे अन्दर से पोषण नही मिल पाता है। आँखें कम देखती हैं, कान कम सुनते हैं, दाँत गिर जाते हैं, घुटना दर्द करने लगता है, हृदय को धड़कने में और खून को साफ कर शरीर में सप्लाई करने में अवरोध आने लगता है। तब शरीर बूढ़ा हो जाता है।

किसने वृद्ध किया है शरीर को? उत्तर है - काल ने, समय ने। समय के व्यतीत होने के साथ-साथ ब्रह्मांड की गतिशीलता के अनवरत आघातों ने शरीर को बूढ़ा किया है, और फिर एक दिन Climax आ जाता है, चरम सीमा आ जाती है बाह्य बलों के आघातों की। जैसे मेज पर किनारे रक्खी पुस्तक को जब हम धीरे धीरे बाहर की ओर खिसकाते हैं, तो पहले तो वह मेज पर ही रहती है परन्तु एक समय आता है, जब वह एक झटके के साथ मेज से नीचे गिर जाती है। वह अन्तिम लाइन है उस लाइन के उस पार जरा सा बल लगा देने से ही किताब गिर जाती है। वह अन्तिम बल न लगे तो वह अपनी स्थिति को बरकरार रखेगी। परन्तु बल यदि लगातार लग ही रहा है तो किताब अवश्य गिरेगी। यदि समय के साथ साथ बाहरी आघात लगातार किसी शरीर पर पड़ ही रहे हैं, तो निश्चित रूप से वह समय भी आयेगा जब उस शरीर को अन्तिम ठोकर लगेगी और उसके सारे अङ्ग प्राकृतिक Function करना बन्द कर देंगे, बस यही मृत्यु है। इसमें शरीर अपनी स्वाभाविक गतिशीलता को बरकरार नहीं रख पाता है, और मर जाता है। वह पिण्ड या शरीर नष्ट हो जाता है।

यदि बाह्य आघात संतुलित लगते रहें। ज्यादा न लगें, कम भी न लगें - अर्थात किसी पिण्ड या शरीर को जितनी वायु, ताप, दाब की आवश्यकता है उतना ही बाहर से आता रहे। न कम आये, न ज्यादा तो शरीर जिन्दा रहेगा। वह नहीं मरेगा। काल या समय उसे नहीं खायेगा। परन्तु यह तभी संभव है जब बाह्य बल लगाने वाले सभी पिण्ड किसी एक शरीर की सुरक्षा का मन बना लें। परन्तु ऐसा नहीं होता है। उन अन्य पिण्डों को भी तो अपना शरीर बरकरार रखना है अतः वे भी बाह्य आक्रमणों से बचने के लिए दायें बायें ऊपर नीचे गतिशील होंगे ही। या फिर ऐसा हो कि ब्रह्मांड स्थिर हो जाय, गतिहीन हो जाय। सूर्य, चाँद, पृथ्वी सभी अपनी जगह पर खड़े हो जांय। इस स्थिति में शरीर या पिण्ड भी स्थिर हो जायेगा। वह भी गतिहीन हो जायेगा। उसे साँस नहीं मिलेगी, पानी नहीं मिलेगा। उसका पोषण नहीं होगा। जिससे उसके अन्दर निर्मित होने वाली ऊर्जा नहीं बनेगी। फिर जब उस शरीर के बाहर का ब्रह्मांड स्थिर हो जायेगा। वायु स्थिर हो जायेगी तो फिर वह उस वायु

Scanned with CamScanner

को झेल नहीं सकेगा। क्योंकि वायु ठसाठस भरी होगी। शरीर ठोस वायु के एक बक्से में बंद होकर रह जायेगा। सूर्य का आतप जब स्थिर हो जायेगा। अर्थात उससे तप्त पिण्ड वायु, जल, गैसें आदि स्थिर हो जायेंगी और गरम होंगी तो वह शरीर उन तप्त पिण्डों को झेल नहीं सकेगा। प्रयास करेगा तो जल जायेगा। अर्थात ब्रह्मांड के स्थिर हो जाने पर या अन्य पिण्डों की गतिशीलता समाप्त हो जाने पर भी शरीर मर जायेगा।

तो फिर शरीर जिन्दा कब रहता है? यह तब जिन्दा रहता है जब बाह्य बल सन्तुलित अवस्था में आयें। उतने आयें जितने शरीर को आवश्यक हों। उसे Over exert न करना पड़े। परन्तु यह सन्तुलन भी नहीं रहता है। क्योंकि अन्य पिण्डों का स्वभाव ऐसा नहीं है कि वे किसी एक पिण्ड के लिये या शरीर के लिये बलिदान करें। अतः स्पष्ट और निश्चित है कि समय के साथ साथ आये आघातों से शरीर जर्जर होगा और फिर मरेगा।

तो फिर कबीरदास जी के पास ऐसा कौन सा घर है जो उनका अपना है (निज घर), जहाँ वे चले जायेंगे तो उन्हें काल नहीं खायेगा। अर्थात उस घर में समय का असर नहीं होगा। या अन्य पिण्डों के आघात जहाँ नहीं लगेंगे। स्पष्ट है कि कबीर अपने शरीर को नहीं ले जा रहे हैं उस घर। वे उस शरीर के अन्दर की उस ऊर्जा को वहाँ ले जाने की बात कर रहे हैं जो उनके शरीर को संचालित करती है। इसे आत्मा कहा गया है। इसे वे परमात्मा के घर ले जाने की बात कहते हैं। परमात्मा में मिलकर आत्मा उसमें विलीन हो जायेगी। फिर वहाँ कोई आघात उसे नहीं लगेंगे और वह वहाँ नष्ट भी नहीं होगी।

कैसी है यह आत्मा, कैसा है यह परमात्मा और कैसा है परमात्मा का घर जहाँ जाने की बात कबीर करते है? उत्तर अत्यंत सरल है - यदि कबीर प्रकाश के वेग से चलें और चलते रहें तो बृह्माण्डीय पिण्डों के आघात उन्हें नहीं लगेंगे क्योंकि उनकी रफ्तार पिण्डों से अधिक होगी। तब समय या काल उनके लिए स्थिर हो जायेगा। काल उन्हें नहीं मार सकेगा। परन्तु इस बृह्माण्ड में यह संभव नहीं है। जैवमंडल भी ब्रह्मांड का अतिसूक्ष्म अंश होने से परमात्मा का ही घर है। सत्य तो यह है कि पृथ्वी का जैवमंडल ही पृथ्वी के प्राणियों के लिये परमात्मा का घर है। चाहे, अनचाहे कबीर को यहीं जाना होगा।

✦✦✦

Scanned with CamScanner

चुटकी

''आप लोगों के खेती बाड़ी के तरीके बड़े पुराने और दकियानूसी हैं।'' शहर से आया एक एग्रीकल्चर का स्नातक कह रहा था - ''अगर तुम्हारे इस सेव के पेड़ में पाँच किलो सेव भी लग जायं तो मुझे बहुत हैरानी होगी।
''मुझे खुद बहुत हैरानी होगी।'' किसान बोला - ''यह तो आम का पेड़ है।''

मित्रता

आदमी का बाहर से कुछ और रूप होता है, अन्दर से तो सारे आदमियों का एक ही रूप होता है और वह है जानवर का। वह पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों की तृप्ति करता है। यही जानवर करते हैं। कोई अन्तर नहीं है जानवर और अन्दर के आदमी में।

इसलिये अन्दर की तो बात ही करना व्यर्थ है। रही बाहर की बात तो आदमी ऊपर से भिन्न-भिन्न प्रकार के चोले ओढ़ लेता है। कोई जनसेवक का, कोई वैश्या उत्थान करने वाले का, कोई वैज्ञानिक का, कोई रईसी का, कोई खुशहाली का, कोई फकीरी का, कोई ईमानदारी का। भांति भांति के चोले वाले लोग मिलते हैं दुनियाँ में। बस यहीं से शुरुआत होती है मेरी बात की - जो आदमी जो चोला ओढ़े है अर्थात वह जैसा दिखने का ढोंग करता है, वह जैसी धारणा अपने प्रति लोगों की बनवाना चाहता है, वैसी धारणा कोई बनाये या न बनाये, लेकिन कम से कम वैसी धारणा बनाने का ढोंग करे तो वह आदमी ऐसे आदमी से प्रसन्न हो जाता है और वह उसका मित्र हो जाता है। और यदि वह आदमी उसके अन्दर के जानवर की बात कर देता है तो वह उसका दुश्मन बन जाता है। दोस्ती-दुश्मनी में बस इतना सा ही अन्तर है। बाहरी चोलों को स्वीकार करिये और मित्र बनाइये या फिर उसके अन्दर के जानवर को प्रकट करिये और शत्रुता मोल ले लीजिये। यदि कोई मध्यम वर्गीय परिवार अन्दर से मंहगाई, दहेज और अन्य खर्चों की मार से पीड़ित है, उसकी चाय में दूध की चंद बूंदें ही गिरती हैं, सब्जी में सिर्फ शोरबा ही रहता है, लेकिन बाहर से वह रईसी को ढोंग करता है। ड्राइंग रूम सजा कर रखता है, आपके जाने पर पता

Scanned with CamScanner

नहीं कब की सहेजी नमकीन आपके सामने परोस देता है कभी के एलबम उल्टे सीधे मेज पर रख देता है। कैसेटों के खाली खोखे अलमारी में सजा कर रखता है और आपके बैठने पर उनका बेटा आकर कहता है कि मम्मी आज मेरी कार खराब है। पापा नहीं हैं, मैं स्कूल कैसे जाऊ? तो समझ लीजिये कि वह परिवार रईसी का सिर्फ चोला ओढ़े है। आप अपनी बातचीत में उसकी रईसी की तारीफ करें तो दोस्त, उससे बहस करें तो दुश्मन।

बस मेरे लिये मित्रता की यही कसौटी है। इसी को चापलूसी या हाँ में हाँ मिलाना भी कहते हैं। इसी से मित्र बनते हैं।

✦✦✦

Scanned with CamScanner

बुद्धि की बात

जज ने अभियुक्त से प्रश्न किया - ''तुमने इस आदमी को मारा और इसने तुमसे कुछ कहा तो तुमने इसे दोबारा मारा। क्या यह सच है?''

''जी हाँ।''

''तुमने ऐसा क्यों किया?''

''जी इसलिये कि पहले तो यह गाली-गलौच करता रहा और जब मैंने इस पर हाथ उठा दिया तो कहने लगा, जज को रिश्वत देकर मैं तुम्हें सजा दिलवाऊँगा। बस मुझसे सहन नहीं हुआ।''

वोट बैंक

बैंक वह होता है जो एक प्रकार की वस्तुओं का काफी मात्रा में भंडार रखता है तथा इस भंडार से लेन देन करता है। इसमें प्रमुख है - मुद्रा संबंधी बैंक। ये बैंक जनता का विश्वास जीत कर उसका पैसा अपने पास जमा कर लेते हैं तथा इस जमा राशि पर समुचित ब्याज की अदायगी करते हैं, साथ ही जमा राशि का विनिवेश अन्यत्र करके स्वयं भी उस पर ब्याज कमाते हैं। रक्त संबंधी बैंक जिन्हें ब्लड बैंक कहते हैं, भी होते हैं जहां से जरूरतमंदों को रक्त उपलब्ध हो जाता है। और अब वोट बैंक - इस बैंक का उपयोग देश के नेताओं द्वारा वोट पाने के लिये किया जाता है। इस बैंक में कुछ चीजें उल्टी हैं। वे ये हैं - जहाँ अन्य बैंक एक विशिष्ट जगह पर होते हैं, उनका संचालन सीमित हाथों के द्वारा होता है, उनके ग्राहकों की संख्या लाखों करोड़ों में होती है वहीं वोट बैंक एक विशाल क्षेत्र में फैले होते हैं। उस क्षेत्र के समस्त नागरिक इसका संचालन करते हैं। इस प्रकार इसका संचालन असीमित हाथों के द्वारा होता है। इनके ग्राहक अत्यन्त सीमित होते हैं। वे चन्द नेता होते हैं जिन्हें उंगलियों में गिना जा सकता है। अन्य बैंक अपने ग्राहकों की जमा राशि मयब्याज के लौटाने को हर समय तत्पर रहते हैं जबकि वोट बैंक के नेता ग्राहक इस बैंक में मात्र आश्वासन जमा करते हैं। इस आश्वासन की साख पर वोट बैंक उन्हें वोट दे देता है। अन्य बैंकों में दैनिक लेन देन होता है जबकि वोट बैंकों में पांच वर्ष में एक बार लेन देन होता है। उस समय इनका ग्राहक आश्वासन जमा कर देता है, उस

पर विश्वास करके यह वोट बैंक उसे वोट दे देता है। और फिर 5 वर्ष के लिये चुप्पी छा जाती है, कोई लेन देन संबंधी हलचल नहीं होती है, बैंक और नेता ग्राहक सुप्त से हो जाते हैं। इस दौरान यदि कुछ सुनाई देता है तो वह है वोट बैंक की चिल्लाहट। बैंक अपने नेता ग्राहक से चिल्ला-चिल्लाकर कहता रहता है 'आश्वासन पूरा करो' हमारे वोट के बदले हमारे लिये कुछ काम करो।' परन्तु यह चिल्लाहट नेता ग्राहक को सुनाई नहीं देती। वह तो अपने ही कार्य में मस्त रहता है, स्वार्थ साधन में निमग्न रहता है।

प्रश्न यह है कि क्या वोट बैंक होते हैं या फिर यह केवल एक कल्पना है? वोट बैंक की परिकल्पना इस आधार पर की जाती है कि हमारे देश की सौ करोड़ के आंकड़े को पार कर गई जनसंख्या कई छोटे-छोटे समूहों में विभक्त है। ये समूह भौगोलिक आधार पर जैसे उत्तर भारतीय, दक्षिण भारतीय, असमिया आदि, धार्मिक आधार पर जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई आदि, जातिगत आधार पर जैसे ब्राह्मण, कुर्मी, जाट, लाला (श्रीवास्तव), हरिजन, आदिवासी आदि, भाषाई आधार पर जैसे हिन्दी-भाषी, बंगाली, तमिल, तेलुगु, मराठा आदि, कार्य के आधार पर जैसे कर्मचारी, शिक्षक, किसान, मजदूर, व्यवसायी, उद्योगपति, विद्यार्थी आदि, जीवन स्तर के अधार पर जैसे अति गरीब, गरीब, मध्यमवर्गीय, उच्च वर्गीय आदि, लिंग भेद के आधार पर जैसे महिला वर्ग, पुरुष वर्ग आदि स्वतः निर्मित हो गये हैं। इन समूहों का मुख्य आधार कुछ हद तक इनकी एक जैसी जीवन शैली का होना है। इससे एक वर्ग विशेष मे एक प्रकार की भावनात्मक एकता आ जाती है। इन समूहों की समस्यायें भी लगभग एक समान होती हैं। हर समूह की समस्या को देश की जनता के सामने तथा सरकार के सामने रखने वाले कुछ नेता उनमें पैदा हो जाते हैं। बस इन्हीं छोटे-छोटे समूहों को वोट बैंक के रूप में प्रकल्पित किया जाता है। बड़े नेता इन छोटे समूहों या वर्गों के छोटे नेताओं को विभिन्न वैध, अवैध तरीकों से प्रभावित करके उस वर्ग विशेष के नागरिकों के वोट हासिल करने का प्रयास करते हैं। इसके लिये साम, दाम, दण्ड और आश्वासन रूपी अस्त्रों का प्रयोग किया जाता है। कोई गरीबी हटाओ का नारा देता है, कोई मुसलमानों को आरक्षण की बात करता है, कोई नकलची विद्यार्थियों को माफ करने का वादा करता है, तो कोई भाजपा को हटाओ का फतवा जारी करवाने के लिये समूह विशेष के नेताओं से माफी मांगता है, उन्हें शतशः नमन करता है, कोई राम रोटी का नारा देता है, तो कोई उच्च शिक्षण संस्थाओं में पिछड़ों को आरक्षण की बात करता है। नेता को वोट चाहिये। इसके लिये वह कोई भी वादा कर सकता है, किसी भी

Scanned with CamScanner

हद तक गिर सकता है। उसका एक मात्र लक्ष्य होता है - येनकेन प्रकारेण वोट हासिल करके सत्ता प्राप्त करना। अगर नेता कुछ नहीं कर सकता है तो वह है - काम और सेवा। अगर वह जनता के बीच जाकर कुछ कार्य करे, जनता की कुछ सेवा करे तो फिर उसे नारों की जरूरत नहीं रहेगी। देश की स्वतंत्र मीडिया स्वयं उसके कार्यों को जनता के समक्ष रखेगी।

भारत को आजाद जुए 63 वर्ष व्यतीत हो गये हैं। एक पूरी की पूरी पीढ़ी युवावस्था को पार कर वृद्धावस्था की ओर उन्मुख है। इन वर्षों में जो जनजागरण हुआ है, अपने अधिकारों के प्रति जो सजगता आई है वह किसी से छिपी नहीं है। आज हर वोटर अपने वोट की कीमत समझने लगा है। वह जानता है कि नारे बेमानी हैं। यदि एक जाति विशेष में गरीब, कर्मचारी, किसान, व्यवसायी आदि नागरिक हैं तो एक जाति के होते हुए भी वे उन्हीं को अपना वोट देते हैं जिनसे उनका सर्वाधिक हित होने वाला होता है। फतवा कुछ भी हो। वे अपना हित करने वाले नेता की पहचान कर उसी को वोट देते हैं। मैं यह कहना चाहता हूँ कि आजादी के तिरेसठ वर्ष बाद आज का नागरिक प्रबुद्ध हो गया है, उसका वोट अब किसी बैंक के वोट की तरह इस्तेमाल नहीं हो सकता है। वह हर आगन्तुक नेता का स्वागत करता है और उसी को वोट देने का आश्वासन भी दे देता है परन्तु अपना वोट देता उसी को है जिसे वह स्वयं चाहता है। किसी वर्ग या समूह की बात तो दूर की है, यहां तक कि एक ही घर में पिता, पत्नी, पुत्र, पुत्र-वधु व पुत्री भी आज किसी एक ही नेता या पार्टी को वोट देने को सहमत नहीं होते हैं। मुझे बार-बार एक घटना याद आ जाती है - एक बार वार्ड मेम्बरी के चुनाव के समय प्रचार हेतु पॉच-छह लोग मेरे घर पर आये। उनमें उम्मीवार के पिता भी थे। उन्होंने बड़ी संजीदगी से कहा कि काफी सोच विचार करने के बाद उन्होंने अपने पुत्र को राजनीति के क्षेत्र में उतारने का निश्चय किया है। उन्होंने विभिन्न आधारों पर मेरे समक्ष यह गणना भी रखी कि उनके उम्मीदवार पुत्र को इतने वोट हर हालत में मिल जायेंगे कि वह वार्ड मेम्बरी का चुनाव जीत जायेगा। उनकी आंखों में मैंने वह झलक भी देखी जिसमें उनका पुत्र भविष्य में विधानसभा सदस्य के रूप में दिखाई देता था। खैर मैंने उन्हें तहे दिल से आश्वस्त किया कि हमारे सारे वोट उन्हीं के पुत्र को मिलेंगे। परन्तु जो होना था वही हुआ। परिणाम घोषित हुआ। उन सज्जन के पुत्र को मात्र एक वोट मिला था। जो संभवतः उसका स्वयं का ही होगा। उसके पिता ने, उनके साथ आये लोगों ने, यहां तक कि उसकी पत्नी ने भी उसे अपना वोट नहीं दिया था। मेरी पत्नी ने तो अपना वोट एक महिला उम्मीदवार जो तपती दोपहरी में अकेली वोट मांगने आई थी को

दिया था। बाकी सदस्यों ने अपनी इच्छानुसार मतदान किया था। अतः वोट मांगने वाले नेताओं को अब यह भली प्रकार जान लेना चाहिए कि इक्कीसवीं सदी का वोटर बीसवीं सदी के वोटर की तुलना में ज्यादा प्रबुद्ध है। अब वोटर उतना सीधा नहीं रहा। अब भेड़िया-धसान चाल भी नहीं रही।

मेरे अनुसार अब पहले के वोट बैंक नहीं रह गये हैं। अब उच्च तकनीकी संस्थाओं में अन्य पिछड़ा वर्ग के आरक्षण की बात उछाल कर अखबारों की सुर्खियां बनकर उनके वोट नहीं बटोरे जा सकते हैं। सेना में मुसलमानों की गिनती करवाकर उनके वोट हासिल नहीं हो सकते हैं। यदि उनके वोट लेना है तो उनके बीच जाना होगा, उनके सुख-दुख को समझना होगा, उनके आँसू पोंछने होंगे।

नेता वर्ग को अब पिछली शताब्दी के वोट बैंकों से तौबा कर लेनी चाहिए। क्योंकि वे अब नहीं रहे। समाज बदल चुका है। इस सत्य को गहराई से मन में बिठा लेना चाहिये। अब यदि थोक के भाव वोट लेना ही है तो इक्कीसवीं सदी के वोटरों की समस्याओं का सर्वे करना होगा, उनके बीच जाना होगा तथा अपने कार्यकर्ताओं को भेजना होगा। किसी जमाने में राष्ट्रपिता बापू ने लगातार देश का भ्रमण कर जन-जन के बीच जाकर यही कार्य किया था। और तब जाकर उन्हें सत्य के दर्शन हुए थे। उन्हें देश की आत्मा के दर्शन हुए थे। यही आत्मा गाँधी की आत्मा बन गई थी। गाँधी और भारत एक हो गये थे, तभी उनकी आवाज देश की आवाज बन गई थी और अधोवस्त्रधारी बापू की इस आवाज से विशाल ब्रिटिश साम्राज्य में घबराहट की लहर दौड़ जाती थी। गाँधी ने जुलाहों को आर्थिक तंगी से मरते देखा था। उन्होंने नील की खेती करने वाले किसानों के शोषण और उनकी शारीरिक यातनाओं को स्वयं अनुभव किया था। उन्होंने काले गोरे के रंग भेद की प्रताड़ना सही थी। तब कहीं जाकर बैरिस्टर मोहनदास करमचंद गाँधी इस देश के राष्ट्रपिता बापू बने थे। उनकी वाणी में अजब दृढ़ता और सच्चाई होती थी जो जन-जन के हृदय में घर कर जाती थी। अंग्रेज कहते थे कि हम एक गाँधी से तो निपट सकते हैं परन्तु उन हजारों गाँधियों से कैसे निपटेंगे जो गांव-गांव और गली कूचों में पैदा हो गये हैं। यह था गाँधी का प्रभाव।

अब इस इक्कीसवीं शताब्दी में नये सर्वे की आवश्यकता है, अब पुराने सर्वे से काम नहीं चलने वाला है। अब पुराने वोट बैंक भी नहीं रहे हैं। मेरे अनुसार अब यदि कोई बड़ा वोट बैंक इस देश में है तो वह है बेरोजगारों का वोट बैंक जिसकी ओर ध्यान देने की जरूरत है। बेरोजगार मैं उसे मानता हूँ जिसे उसकी काबलियत एवं क्षमता के मान से समुचित पैसा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता है। कोई

Scanned with CamScanner

एम.ए.पी.एच-डी. यदि प्रायमरी स्कूल में संविदा शिक्षक है तो मैं उसे बेरोजगार की श्रेणी में रखता हूँ। वह स्वयं भी अपने को बेरोजगार ही समझता है। इसी प्रकार अन्य नवयुवक भी हैं जो बिलकुल ही बेरोजगार हैं। एक अन्य वोट बैंक इस देश की महिलाओं का वोट बैंक है जिसकी आबादी देश की आबादी की आधी है। महिलाओं के दुख दर्द को समझकर उसका विभिन्न स्तरों में निवारण करके उनका सुदृढ़ वोट बैंक बनाया जा सकता है। महिला पहले महिला होती है बाद में वह हिन्दू, मुसलमान, गरीब, अमीर, निरक्षर, गुजराती या बंगाली होती है। उसके दुख दर्द एक से होते हैं। प्रसव पीड़ा सबको समान रूप से कष्ट देती है। पुरुष प्रधान राज्य में सभी महिलायें घर की चाहरदीवारी के अन्दर ऐसे माहौल में जीती हैं जहां उनके पास काम-काम और सिर्फ काम होता है। परन्तु उनके पास निर्णय का अधिकार नहीं होता है। यह एक प्रकार की गुलामी है। अतः महिलाओं के लिये बुनियादी कार्य करके उनका वोट बैंक लिया जा सकता है। सिर्फ सतही कार्य से या लीपा पोती और नारे बाजी से महिलाओं के वोट अब हासिल नहीं हो सकते हैं। सिर्फ आरक्षण करके महिला उत्थान का विशाल कार्य नहीं किया जा सकता है।

अंत में मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि अब जाति और धर्म तथा क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर आज की जनता की बुनियादी समस्याओं को देखना पड़ेगा। उन्हें पानी, बिजली, सड़क, रोजगार आदि की भरपूर सुविधा देना होगी। शिक्षण संस्थाओं में लूट खसोट रोक कर वास्तविक शिक्षा को बढ़ावा देना होगा। जो पार्टी या नेता जन सामान्य के ये बुनियादी कार्य करने में सक्षम होंगे उन्हीं के पास बड़ा वोट बैंक होगा और वही राज करेगा।

✦✦✦

मुवक्किल

मुलजिम (चोरी और सेंधमारी के इल्जाम से बरी) - ''वकील साहब मैं जल्दी ही कभी आपके यहाँ आऊँगा।''
वकील - ''परन्तु, कृपया दिन में ही आयें।''

सिस्टम

संजय दत्त को टाडा कोर्ट ने 6 वर्ष के सश्रम कारावास एवं 25000/- जुर्माने की सजा सुना दी। क्यों हुई है संजय दत्त को सजा? वह इसलिये हुई है क्योंकि कोर्ट ने उन्हें अवैध शस्त्र रखने का दोषी पाया है। क्यों रक्खे थे संजय दत्त ने अवैध शस्त्र? निश्चित रूप से उन्होंने ये शस्त्र आत्मरक्षा के लिये व अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिये रक्खे थे। उन्हें चिंता थी कि कोई अन्डरवर्ल्ड डान उन्हें गोली मार सकता है जैसे गुलशन कुमार को गोली मार दी गयी थी। वैसे ही जैसे महेश भट्ट पर आक्रमण किया गया था। अत: उन्हें अच्छे किस्म के शस्त्रों की आवश्यकता महसूस हुई क्योंकि आधुनिक युग में बदमाशों के पास भी आधुनिक शस्त्र हैं। अभी हाल ही में डॉ. अम्बिका पटेल उर्फ ठोकिया ने उन छह एस.टी.एफ. के जवानों को आग्नेयास्त्रों से मार डाला जो उसे मारने के अभियान में निकले थे। ये कुछ घटनायें हैं।

कानून हमारे यहाँ आदर्श बनाये जाते हैं। उनमें अन्तर का कोई स्थान नहीं होता। संजय दत्त ने भी वे हथियार अपने पास रक्खे जिन्हें कानून इजाजत नहीं देता। अन्डरवर्ल्ड डान भी वे हथियार रखते हैं जो अवैध हैं। ये एक ही कानून के अन्तर्गत अवैध हैं। संजय दत्त ने आत्मरक्षा हेतु अवैध हथियार रक्खा जबकि बदमाश दूसरे को मारने, उसकी सम्पत्ति छीनने के लिये, समाज में अव्यवस्था फैलाने के लिये, भय का वातावरण बनाने के लिये हथियार रखता है। नक्सलवादी, उल्फा उग्रवादी और कश्मीर के जेहादी, अपने अपने मकसद के लिये वे हथियार रखते हैं जिन्हें कानून मान्यता नहीं देता।

कानून सबको एक ही निगाह से देखता है क्योंकि यदि उनमें अन्तर किया

Scanned with CamScanner

गया और किसी एक तथा कथित अपराधी को छोड़ दिया गया तो न्याय व्यवस्था के लिये आधिकारिक कुर्सी पर आसीन न्यायाधीश पर भी उंगली उठ सकती है। कभी कभी सोचता हूँ - कितने मजबूर होते हैं न्यायाधीश भी। दोनों पक्षों के वकील अपने-अपने पक्षों को जिस रूप में पेश करते हैं, उन्हीं के दायरे में रहकर उन्हें एक फैसला देना होता है। वास्तव में वह न्याय है या नहीं इस बात से कोई सरोकार नहीं होता। न्यायाधीश को पूरे मुकदमे के दौरान आभास हो जाता है कि न्याय क्या है। परन्तु वे अन्तरात्मा की आवाज पर न्याय नहीं कर सकते। तभी तो संजय दत्त को सजा देने वाले न्यायाधीश ने उन्हें सांत्वना भरे लहजे में निराश न होने तथा अपने पर भरोसा रखने की बात कही। कहीं न कहीं न्यायाधीश को अवश्य कचोटा होगा कि एक लूट के अपराधी को भी वे लगभग ऐसी ही सजा देते हैं। कातिल को अधिकतर उम्र कैद दी जाती है। संजय दत्त ने किसी की सम्पत्ति नहीं छीनी। किसी को मारा नहीं। उन अवैध अस्त्रों से किसी आतंकी गतिविधि को अंजाम नहीं दिया। उन्होंने सिर्फ हथियार रक्खे थे। उनका प्रयोग नहीं किया गया। संजय दत्त को छह वर्ष का सश्रम कारावास दिया गया। बम्बई बम कांड के अनेकानेक अभियुक्तों को इससे भी कम की सजा मिली है। यदि कोई डकैत हत्या और डकैती के बाद पकड़ा जाता है तथा मुकदमे का सामना करता है तो अपने तरीकों से साक्ष्यों को वह प्रभावित कर देता है। चश्मदीद गवाहों को धमका देता है और वह बाइज्जत बरी हो जाता है। हत्या के दोषी को साक्ष्यों के अभाव में कानून छोड़ देता है। परन्तु संजय दत्त को सजा हो गयी क्योंकि उसने संभवतः इकबाले जुर्म किया था। मात्र शस्त्र रखने की इतनी बड़ी सजा। यह उसका उपयोग करने की सजा के लगभग तुल्य है।

कानून ने, संविधान ने संजय दत्त को संपत्ति अर्जित करने की छूट आत्मरक्षा करने की छूट तो दे दी परन्तु कहा कि उनकी संपत्ति की रक्षा शासन का दायित्व है। उनके द्वारा कायम किये गये थाने में तैनात एक पुलिस बल अपने क्षेत्र के समस्त नागरिकों की सम्पत्ति एवं जीवन की रक्षा करेगा। यदि किसी नागरिक को किसी संपत्ति की क्षति होती है उसकी जीवनहानि होती है तो पुलिस अपराधी को खोजकर पकड़ कर न्यायालय के सामने प्रस्तुत कर उसे सजा देने की मांग करेगी। जिसकी संपत्ति की क्षति हुई है, जिसको जनहानि हुई है वह सान्त्वना के लिये मुकदमे के फैसले की प्रतीक्षा करे। संपत्ति यदि बरामद होती है तो उसे मिल जायेगी परन्तु यदि बरामद नहीं होती तो अपराधी के दंडित होने से ही संतोष करना पड़ेगा। वैसे होगा तो यह कि यदि संपत्ति बरामद नहीं होती तो मुकदमे के फैसले के अपराधी के पक्ष में जाने की ज्यादा संभावना बन जायेगी। उसे दंड भी कम मिलेगा तथा पीड़ित

Scanned with CamScanner

नागरिक को फैसले से सुख भी कम प्राप्त होगा। संजय दत्त ने अलीगढ़ी ताले के अलावा अपनी संपत्ति की सुरक्षा करनी चाही तो वह कानून के शिकंजे में जकड़ गया।

न्याय व्यवस्था का एक आधारभूत पहलू यह भी है कि न्याय से या फैसले से समाज में यह संदेश जाय कि अपराधी को दंडित किया जाता है, उसे सजा दी जाती है। इस संदेश का परिणाम यह होगा कि समाज के लोग अपराध करने से डरेंगे। और दंड के भय से अपराध नहीं करेंगे। दूसरा संदेश यह है कि 'न्याय के तराजू में बगैर भेदभाव के सभी एक समान हैं।' संजय दत्त एक प्रसिद्ध अभिनेता हैं। वह धनी व्यक्ति हैं फिर भी उन्हें सजा हुई। उनकी लोकप्रियता और उनका धन न्याय के समक्ष तुच्छ साबित हुआ। उन्हें एक दिन का मौका भी नहीं दिया गया और जेल भेज दिया गया।

कहते हैं पुलिस की इमेज खराब है। अर्थात जनता का सेवक होने और अपराधियों में भय पैदा करने वाली एजेंसी होने की जो इमेज बनाने का दायित्व इसे सौंपा गया था वह इसने पूरा नहीं किया। निश्चित रूप से जनता की निगाहों में।

न्याय व्यवस्था भी स्वतंत्र इसलिये बनाई गयी है ताकि विधायिका एवं कार्यपालिका इसके कार्य में दखलंदाजी न कर सकें। इस प्रकार की इमेज न्याय प्रणाली की होनी चाहिये कि वह सर्वोपरि है। विदेशों में तो बहुत अच्छी इमेज है इसकी। जब भोपाल गैस कांड का मुकदमा कुछ अमरीकी वकीलों ने अमरीका की अदालत में ले जाना चाहा और इस प्रकार का वाद दायर किया तो उसके फैसले में वहाँ के जज ने कहा कि भारत की न्याय व्यवस्था अच्छी है और इस मुकदमे के अमरीका में चलने की कोई आवश्यकता नहीं है। फलतः भारत की अदालतों में ही वह मुकदमा चला।

विदेशों में भारत की लोकतान्त्रिक व्यवस्था को एक बड़े पैमाने पर तोला जाता है। उस पैमाने पर समस्त लोकतान्त्रिक देश अच्छे पाये जायेंगे जो आदर्शवादी कानून बनाये होंगे। इस प्रकार के कानून जिसमें दस अपराधी बच जांय लेकिन एक निर्दोष सजा न पाये। इन देशों में ड्रग्स के लिये कानून होते हैं। मुक्त व्यापार होता है। मौलिक प्राकृतिक अधिकार होते हैं। जब जार्ज बुश हिन्दुस्तान आये तो उन्होंने यहाँ का लोकतंत्र वास्तविक एवं अच्छा पाया। उन्होंने देखा कि यहाँ का राष्ट्रपति मुसलमान है, प्रधानमंत्री सिख है और रूलिंग पार्टी की अध्यक्ष ईसाई है उन्होंने देखा कि हिन्दुस्तान में 16 करोड़ मुसलमान रहते हैं फिर भी लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम है जबकि पड़ोसी देश में बार-बार लोकतंत्र आता है और झांकते ही खदेड़

दिया जाता है और डंडे का शासन या सैनिक शासन लागू हो जाता है। जार्ज बुश ने बड़े तराजू में हिन्दुस्तान को तौला। यहाँ की लोकतान्त्रिक व्यवस्था को देखा और प्रसन्न होकर 'ओके' कर दिया। अमरीकी जज ने भी भारतीय न्याय व्यवस्था को बड़े पैमाने पर तौला और अमरीकी वकीलों का मुकदमा इसलिये खारिज कर दिया क्योंकि भारत की न्याय व्यवस्था अच्छी है।

क्या है बड़ा तराजू और छोटा तराजू? जब अन्तरिक्ष यात्री नील आर्मस्ट्रांग ने पृथ्वी के बाहर से, चाँद से पृथ्वी को देखा तो उसे यह बहुत सुन्दर चमकदार थाली की तरह दिखायी दी। हम जब इसके अन्दर रहकर इसे देखते हैं तो हमें यह कहीं चमकदार थाली नजर नहीं आती। यह सैमुअल पर्ल वक की 'द गुड अर्थ' नजर आती है। प्रलयंकारी सुनामी लहरों से, कभी भूकंप के तेज झटकों से तो कभी अतिवृष्टि कभी अनावृष्टि से भरी हुई ठोस धरातल वाली जमीन नजर आती है। नील आर्मस्ट्रांग के पास बड़ा तराजू था जब वह चाँद पर था। हमारे पास छोटा तराजू होता है जब हम इसके अन्दर रहते हैं।

जब न्याय व्यवस्था को छोटे तराजू पर एक हिन्दुस्तानी तौलता है तो पाता है कि साक्ष्य अधिनियम पर आधारित यह व्यवस्था पीड़ित व्यक्ति के कष्ट की पूर्ण भरपाई करने में अक्षम है। पीठासीन न्यायाधीश यदि किसी आपराधिक घटना का गवाह भी हो तो भी न्याय की कुर्सी पर उसे वही न्याय करना होगा जैसा साक्ष्यों से प्रमाणित होगा। उन्हें अपनी स्वयं की गवाही का भी परीक्षण करना होगा कि वह विधिमान्य है या नहीं। कहीं उसमें कोई तकनीकी खामी तो नहीं है।

पुनः वही बात, संजय दत्त के अवैध शस्त्र रखने से पीड़ा किसी एक व्यक्ति को नहीं पहुंची। उससे एक कानून पीड़ित हुआ है और उसे सजा देकर उस कानून को सुख एवं सान्त्वना पहुंचाई गयी है। वह कानून चूंकि बहुसंख्यक जनता द्वारा चुनी सरकार द्वारा निर्मित है अतः ठीक ही होगा। उस कानून को राहत पहुंचाकर उचित ही किया गया है। वर्तमान सिस्टम एक प्रवाह है। इसमें हम सब बह रहे हैं। यह चालू सिस्टम के अनुरूप ही है क्योंकि सिस्टम एक दिन में नहीं बनता। वह एक दिन में नहीं बिगड़ता। कानून की एक लाइन लिखकर कोई सिस्टम को नहीं बदल सकता। यह एक अनवरत प्रवाह है जिसकी धारा में बहने के लिये हम बाध्य हैं। धीरे-धीरे प्रवाह बदलेगा तो सिस्टम बदलेगा।

Scanned with CamScanner

हास्य

एक अति बलिष्ट साँड़ को देखने के लिए भीड़ लगी थी। उसका मालिक धड़ल्ले से टिकटों की बिक्री कर रहा था। दूरस्थ गाँव का एक हष्ट पुष्ट किसान भी परिवार सहित उसे देखने आया। वह बिना टिकट लिये अन्दर जाने लगा तो गेटकीपर से उसका झगड़ा काफी बढ़ गया। झगड़ा देखकर मालिक ने वहाँ आकर बिना टिकट उसे जाने की अनुमति दे दी। परन्तु किसान अपने परिवार को भी ले जाने पर अड़ गया। हारकर मालिक ने पूँछा - ''कितने लोग हैं तुम्हारे परिवार में?''

किसान ने कहा - ''मेरी 5 पत्नियां हैं। 20 लड़के तथा 10 लड़कियां हैं। बहुओं और नातियों समेत कुल 60 लोग हैं।''

यह सुनकर मालिक बोला - ''ऐसा करो कि तुम यहीं रुको मैं साँड़ को यहीं ले आता हूँ, तो वह तुमको देख लेगा।''

मेरा गाँव

यह बुंदेलखण्ड का एक गाँव है। तीन ओर ऊँचे लंबे दूर तक फैले विशाल पर्वतों की श्रृंखला - अविरल हरित बनावली। तेंदू के वृक्षों में कोमल कलियां, पलास के पौधों में अरुण, सुकोमल टेसू और उन हरित त्रिकोंणों में कभी कभी दिखाई पड़ने वाले चीते, साम्हर, और जनौर। कुत्ते से ज्यादा शक्तिशाली, आकार में कुछ बड़ा डिंगरा और यत्र तत्र डालियों पर छलांगें लगाते, उल्टे लटककर किलोलें करते कलमुहा बंदर। लगभग प्रत्येक पर्वत के शिखर पर ईंट एवं पत्थर की बनी गढ़ियां। आल्हा उद्दल के समय की हैं ये। पुरानी, लंबी, कुछ चपटी ये ईंटें समय के आघात से और जर्जर हो गई हैं और इनमें नोना लग गया है। इन गढ़ियों में बन्दूक की मारें बनी हैं। सूर्य के प्रचंड आतप से जलते ये पर्वत संध्या समय और सुहावने हो उठते हैं जब सूर्य अपने सम्पूर्ण तेज को लालिमा में समेटकर इन गढ़ियों के पीछे छिपने चला जाता है। उस समय पुछारें (मोर) अपने रंग बिरंगे पंखों को फैलाकर इन्हीं गढ़ियों पर नृत्य करने लगती है। चारों ओर घूम-घूम कर छिटक-छिटक कर

Scanned with CamScanner

आत्मविभोर होकर नाचते इन मयूरों के दर्शक होते हैं मुरैला, और गाँव के गुल्ली डण्डा खेलते बच्चे तथा पर्वत से उतरती बकरियों के पीछे-पीछे चलने वाले साफा बांधे हाथ में अपने शरीर के आकार से एक हाथ लंबी लाठी लिए बरेदी। इन बरेदियों के अलगोजों से निकली दूर-दूर तक फैले पर्वतों को मधुर सम्पन्दन से भरने वाली ध्वनि मयूरों के नृत्य को और मनोरम बना देती है।

मेरे गॉव में एक सरोवर भी है। यह छोटा नहीं है, बहुत बड़ा है। बचपन में तो इससे बड़े सरोवर होने की बात तो हम मान ही नहीं सकते थे। बातों हाथों और लाठी तक से लड़ पड़ते थे कहने वाले से। इसकी बंधान इतनी ज्यादा चौड़ी है कि इसमें भगवान का एक बड़ा मंदिर, बरगद के पुराने वृक्ष, गूलर के पेड़ और अशोक वृक्ष हैं। इसके एक ओर पर्वत है। यह चन्देलू बन्धान मोटे-बड़े परन्तु तराशे गये चौकोर प्रस्तर खण्डों से निर्मित है। तालाब की सुंदरता का तो कहना ही क्या। यह तालाब पूर्व-मुख है। भगवान भास्कर घाट के सामने ही उदित होते हैं। इस विशाल सरोवर के दो तिहाई भाग में फैली रहती है पुरैन जिससे उत्पन्न कमल पुष्पों की छटा बसंत और ग्रीष्म में देखते ही बनती है। गुंदला बांधकर नावनुमा बनाकर बांस की पतवार से खेते हुए खज्झों के बीच से गुजरते हुए, कमल नाल के कुरेदते कांटों से छिलते हुए छतियां (कमल गट्टे) तोड़ते हैं हम। बहुत कमलगट्टे और चिरइंयां (कमलनाल की जड़ जो कीचड़ में रहती है सफेद लम्बी) खाते हैं हम। कितना आनंदमय जीवन है। हमारे इस सरोवर का पानी कभी नहीं सूखता है। इसी के कारण गाँव के कुओं का जल भी कभी नहीं रीतता। जब पूरे क्षेत्र में पानी की कमी हो जाती है तब भी इसमें आदमी डूबने लायक पानी रहता है। तभी तो गर्मियों में यहां तीन-चार हाथी आ जाते हैं महावतों के साथ। पुरैन खाते हैं और पानी पीते हैं। महावत हमें भी उन हाथियों पर सवारी करवाते हैं। ''मल घच्चे'' कहने पर ये हाथी चलते हैं। घर की याद नहीं आती। लगता है मंदिर के बगल में बंधान पर बनी सीमेन्ट की बेंच पर ही बैठे रहें और सरोवर की छटा को निहारते रहें।

कुछ दिन पहले मैं अपने गाँव गया। वहां मुझे वह बरगद नहीं दिखा जहां हम सिलोर डण्डा खेला करते थे। मंदिर और तालाब कुछ उदास से दिखे यद्यपि बंधान के नीचे यूकीलिप्टस की घनी कृत्रिम बनावली दिखी परन्तु मन आल्हादित नहीं हुआ। परिवर्तन की लहर ने मेरे गाँव के पहाड़ और तालाब को भी नहीं छोड़ा है। मैं भी तो नहीं बचा हूँ समय से। पैतालीस वर्ष पूर्व के वर्तमान को अपने गाँव में आज देखना चाहता हूँ। मैं भी तो अब शहर में रहता हूँ। सर, पर्वत और खजूर के वृक्ष अब सिर्फ मेरी कल्पना में हैं। मेरा गाँव एक मृग मारीचिका है।

◆◆◆

Scanned with CamScanner

शिकार

मि. बिल जब जंगल में अपने कैम्प वापस लौट रहे थे, कीथ के मिलने पर बोले -

बिल - ''कीथ, क्या शिकार पार्टी के सब लड़के आ गये?''

कीथ - ''हाँ''

बिल - ''सभी छह लड़के।''

कीथ - ''हाँ, सभी छह लड़के।''

बिल - ''और क्या सभी सुरक्षित हैं?''

कीथ - ''हाँ, सभी ठीक हैं।''

बिल (सीना फुलाते हुए) - ''तो फिर मैंने एक हिरन को मारा है।''

ढलती शाम की शान्ति

जीवन में शान्ति पाने का बड़ा ही सरल उपाय है। किसी से आशा न रखना। यदि हम किसी अन्य से कुछ पाने की अपेक्षा करेंगे और वह हमें प्राप्त नहीं होगी तो हमें दुःख होगा और हम अशांत हो जायेंगे। किसी से कुछ प्राप्त होने की अपेक्षा दो प्रकार से उत्पन्न होती है। प्रथम - किसी से याचना करने पर एवं द्वितीय - हमारे द्वारा किसी के प्रति किये गये अच्छे एवं हितकारी कार्यों के प्रतिफल के रूप में बिना याचना के प्राप्ति की अपेक्षा।

प्रथम प्रकार की अपेक्षा हमारी याचना पर प्राप्ति की आशा है। वास्तव में हम जिससे याचना करते हैं उससे कुछ पाने का हमें अधिकार नहीं है, फिर भी हम आशा करते हैं कि हमारे प्रभाव या दीनता या बल का आकलन कर सामने वाला हमें वांक्षित वस्तु प्रदान करेगा। परन्तु यदि हमें याचना पर कुछ नहीं मिलता है तो दुःख तो होगा, क्रोध भी आयेगा परन्तु उसकी मात्रा अधिक नहीं होगी, हमारा मन कम अशांत होगा। जैसे, भिक्षुक के याचना करने पर कोई कुछ नहीं देता है तो भिक्षुक अधिक दुःखी नहीं होता है। नेता जी जब चंदा मांगते हैं, या कोई डान या डकैत जब हफ्ता वसूली की मांग करते हैं, तो अभीष्ट वस्तु प्राप्त न होने पर उन्हें

क्रोध आता है भविष्य में उसका अनिष्ट करने की भावना जागृत होती है। नेता जी आयकर का छापा पड़वा देने की बात सोचने लगते हैं, तो डान बम ब्लास्ट करने की सोचते हैं। परन्तु उन्हें अप्राप्ति का मानसिक दुःख अधिक नहीं होता है क्योंकि माँगने के पूर्व उन्हें यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि माँगी गयी वस्तु उन्हें मिल भी सकती है और नहीं भी मिल सकती है। अतः दुःख भी आधा ही होता है।

वास्तविक दुःख का कारक द्वितीय प्रकार की अपेक्षा है। यह अपेक्षा या आशा हमारे कृतित्व के अहं से उत्पन्न होती है। इस आशा में हमारा 'अधिकार भाव' भी निहित होता है। जबकि प्रथम प्रकार की आशा में मात्र 'याचक भाव' होता है। 'अधिकार भाव' होने से हम आशापूर्ति हेतु कुछ कड़क होते हैं। जीवन में हम शारीरिक व मानसिक श्रम करते हुये अपने आपको अपने परिवार पर केन्द्रित कर देते हैं। धन कमाते हैं। सुख सुविधायें जुटाते हैं। शिक्षा के साथ बच्चों का भविष्य संवारते हैं। और फिर गाते बजाते हुये हम जिनके विवाह रचाते हैं, इस संसार में जिन्हें हम जीने लायक बनाते हैं जिनके लिये हम 30-40 वर्षों तक समर्पित भाव से कार्य करते हैं उनसे हम अधिकारपूर्ण आशा रखते हैं। वृद्धावस्था में हम यह अपेक्षा करते हैं कि वे हमारी सेवा करें। हमें वही स्नेह दें। हमें अभीष्ट सम्मान दें। परन्तु बच्चे जब अपने परिवार में मस्त होकर हमें भुला देते हैं, हमें नजरअन्दाज कर देते हैं, अपेक्षित सम्मान न देकर अपमानित करते हैं तब हमारी आशा टूट जाती है और हम अशान्ति के गर्त में समा जाते हैं। उच्च रक्तचाप के मरीज हो जाते हैं। निर्बल होती जा रही हमारी काया और उसके साथ मानसिक संतापा। हम टूट जाते हैं। हम न टूटते यदि हमने आशा न की होती। फिर अपने परिवार का यह आचरण हमें कष्ट न देता।

अतः कृतित्व के फल की आशा न रखना ही शान्ति का मार्ग है।

◆◆◆

ज्ञान पर हर्ष

एक दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी अपनी सहपाठिन को प्यार, जीवन, मृत्यु, सभ्यता आदि पर अपने ज्ञान से प्रभावित करने का प्रयास कर रहा था। इसी क्रम में वह बोला - ''देखो न - मैं ललित कलाओं का पूरा ज्ञान रखता हूँ परन्तु रेडियो के चलने के विषय में कुछ नहीं जानता हूँ।''

''अरे ऐसा क्या!'' सहपाठिन बोली - ''यह तो बहुत ही आसान है। इसकी बटन घुमाओ और यह चालू हो जाता है।''

नशा और आनन्द

मनुष्य नशे में जीता है क्योंकि नशे में ही आनन्द है। क्यों? नशा क्या है? नशा एक बहाव है - इसमें शरीर - इसके भीतरी अङ्ग तथा बाह्य अङ्ग, सभी स्वतंत्र होकर गति करते हैं। उनकी एक दूसरे पर पकड़ कम हो जाती है। उस अवस्था में जो अङ्ग अपनी मूल अवस्था में दूसरों की तुलना में जितना अधिक बलशाली होता है वह उतना ही अधिक क्रियाशील हो जाता है। और दूसरों को दबा देता है।

बहुआयामी जीवन में एक दिशा की ओर बढ़ चलना ही नशा है। इसमें अन्य सभी गतिविधियाँ गौंड़ हो जाती हैं। यह नशा अल्प अवधि, मध्य व दीर्घ अवधि का होता है। शराब आदि अल्प अवधि के नशे हैं। पद का नशा मध्य अवधि का व धन, भक्ति तथा काव्य का नशा दीर्घ अवधि का नशा है। नशे की अवस्था में मस्तिष्क आराम में रहता है। उसे गणनायें करके सही गलत का निष्कर्ष नहीं देना पड़ता है। वह एक प्रकार से अर्द्ध निद्रावस्था में रहता है। उस समय शरीर द्वारा किये जाने वाले कार्य शरीर के विभिन्न अङ्गों के लघु ऊर्जा केन्द्रों द्वारा संचालित होते हैं। जैसे नशे में मोटर साइकल चलाने पर हाथ एक्सीलेटर को बढ़ाता ही चला जाता है तथा आदतन ही उसे कम ज्यादा करता है। पैर आदतन ब्रेक मारते हैं। भांग का नशेड़ी हंसता ही रहता है या खूब खाता चला जाता है। गांजे का नशेड़ी कल्पना की दुनिया में विचरण करता रहता है। अफीमची उसके इर्द-गिर्द की सारी वास्तविकताओं को भूल जाता है और पिनक में एक स्थान पर पड़ा रहता है और

Scanned with CamScanner

खूब सोता है। हेरोइन, L.S.D. स्मैक, चरस आदि ऐसे ही नशे हैं जो मस्तिष्क को कम या ज्यादा विरामावस्था में पहुंचा देते हैं अतः दुनिया के यथार्थ, जीवन के कटु सत्यों को भुलाकर मस्तिष्क आराम करने लगता है नशे में। यही आराम आनन्द देता है। फिर मनुष्य इसी आनन्द का आदी हो जाता है और वह इसे बार-बार पाने का यत्न करता है। इसी को नशे की लत पड़ना कहते हैं।

आनन्द सभी को चाहिये। पैसा रुपया, गद्देदार सोफे, अच्छे पकवान, अच्छा संगीत, सहवास, प्रकृति के सुन्दर दृश्य - ये सभी आनन्द देते हैं क्योंकि इनके उपयोग व उपभोग के समय मस्तिष्क बाकी सब भूलकर इन्हीं में खो जाता है। यह भी एक प्रकार का नशा है क्योंकि यथार्थ को भूलने में ही आनन्द है। वहां न बॉस की डांट फटकार है और न बीबी का लेक्चर। न पैसे कमाने के लिए जिद्दोजहद।

भक्ति में आनन्द है क्योंकि भक्ति भी एक नशा है। भगवान का संकीर्तन, उनका ध्यान, ध्यान में ही भगवान की सेवा - बस, सोचते रहो, भगवान की पूजा करते रहो। उन्हें नहलाओ, उनका शरीर पोंछो, तेल कंघा के बाद उन्हें सुस्वादु भोजन करवाओ फिर शयन कराओ। उन्हें लोरी सुनाओ और चादर ओढ़ाकर हल्के-हल्के उनके पैर दबाते रहो। भगवान के सो जाने के बाद तुम उस अवस्था से बाहर आओ। भगवान की सेवा में खो जाना, अपने आपको उन्हें समर्पित कर देना - यही भक्ति है, इसी में आनन्द है। इसी को मानसिक पूजा भी कहते हैं। कहते हैं - एक बहू भगवान की बड़ी भक्त थी समय न मिलने से वह अपने गृह कार्य भी करती जाती थी और भगवान की मानसिक पूजा भी करती रहती थी। उसकी सास - बस - सास थी। एक बार बहू बर्तन माजते हुए मानसिक पूजा कर रही थी। उसी समय सास ने आकर देखा कि बहू बर्तन माजने में सुस्ती कर रही है, अतः वह चिल्लाने लगी। बहू तो मग्न थी पूजा में। उसे कुछ सुनाई नहीं दिया। तब सास ने एक डण्डा उसके हाथ में मारा। डण्डे से हाथ हिला और फिर वहां कढ़ी फैल गई। बहू उस समय भगवान को कढ़ी परोस रही थी। हाथ हिलने से चमचे की कढ़ी फैल गई। सास भौचक। कढ़ी कहां से आई। उसने कहा - बहू मायाविनी है, चुड़ैल है। बहू ने सरलता से उत्तर दिया - "माँ मैं तो भगवान को कढ़ी परोस रही थी जब तुमने डण्डा मारकर मेरा हाथ हिला दिया और कढ़ी फैल गई। मैं और कुछ नही जानती हूँ।" सास को सत्य का भान हुआ और अपनी गल्ती का अहसास भी। फिर बहू के साथ कभी वैसा न हुआ।

तो भक्ति में आनन्द है क्योंकि उसमें एक नशा है, एक लय है। मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास, तुलसीदास, रहीम, रसखान इसी भक्ति में आकण्ठ डूबे

Scanned with CamScanner

थे, इसी आनन्द में सरावोर थे। उनके इस आनन्द से दुनिया को मिली रामचरित-मानस, भ्रमर गीत, सूरसागर, रहीम के दोहे, रसखान के पद, चैतन्य का नृत्य और मीरा के पद। ये रचनायें उनके आंतरिक आनन्द का कुछ अंश पाठकों को भी दे जाती हैं और पाठक भी कुछ आनन्द प्राप्त कर लेता है।

किसी बड़े आनन्द को पाने के लिए पहले छोटा आनन्द भी पाना होता है कभी-कभी। जैसे बड़े जंक्शन से लम्बी ट्रेन पकड़ने के लिए पहले उस जंक्शन तक की यात्रा किसी पैसेन्जर से करनी होती है। कई साधु भगवान की भक्ति का आनन्द पाने के लिए पहले गांजे की दम लगाते हैं फिर उसके नशे में भक्ति के आनन्द की ओर बढ़ते हैं। कवि - काव्य रस में डूबने के पूर्व शराब पीते हैं। सैमुअल टेलर कॉलेरिज ने अफीम की पिनक में एक काव्य की रचना की जो थोड़ी अधूरी थी। पिनक उतर जाने पर वह फिर कभी उसे पूरी न कर सका। कभी-कभी एक नशे को त्यागकर लोग दूसरा नशा पकड़ लेते हैं। सिगरेट छोड़कर पान खाने लगते हैं। पान छोड़कर सुर्ती खाने लगते हैं। संजय दत्त (फिल्मी कलाकार) ड्रग एडिक्ट था। इसे छोड़ने के लिए उसने बाडी बिल्डिंग का नशा पकड़ लिया और फिर क्या था उसने अपना शरीर तो बलिष्ट बनाया ही, मुम्बई की कई व्यायाम शालाओं को उसने आर्थिक मदद देकर कइयों की बाडी बिल्डिंग की।

कुर्सी का नशा, धन का नशा, शक्ति का नशा - लोग इन्हीं में आनन्द प्राप्त करने लगते हैं। इसलिए यदि आनन्द पाना हो तो नशा करना ही पड़ेगा। पढ़ाई का नशा होगा तो अव्वल पास होगे। दफ्तर में काम का नशा होगा तो तुम बॉस के खास हो जाओगे। व्यापार का नशा होगा तो लक्ष्मी मित्तल बन जाओगे। भगवान की भक्ति का नशा हागा तो जनता में पूजे जाओगे। शोध का नशा होगा तो कोलम्बस, गैलीलियो, न्यूटन, आइन्सटीन जैसा नाम कर जाओगे। और कोरा शराब चरस गांजे का नशा होगा तो आनन्द तो मिलेगा परन्तु यह शरीर नष्ट हो जायेगा। और तुम समाज को कुछ दे भी न पाओगे। तुम उस पर बोझ बने हुए मर जाओगे। इसलिए आनन्द के लिए नशा करो - ऐसा जो तुम्हे भी आनन्द दे और समाज को भी आनन्दित करे।

किसी होनहार गरीब बालक को आर्थिक सहारा दो। किसी ठण्ड से ठिठुरते वृद्ध के ऊपर एक कम्बल डाल दो। किसी फटे पैंट व टूटी चप्पलों वाले रिक्सा वाले को एक पैंट व एक जोड़ी चप्पल दिलवा दो। किसी बेसहारा गरीब माँ के घाव साफ कर उनमें पट्टी बांध दो। उसे अपने हाथ से खाना खिला दो। दहेज की मांग से प्रताड़ित किसी नव वधु के ससुराल पक्ष का हृदय परिवर्तन कर दो। कह दो कि

Scanned with CamScanner

विवाह के बाद अब यह तुम्हारा ही अङ्ग है तुम्हारे परिवार की सदस्य है, तुम्हारी बेटी है, उसे मत सताओ। जरूरतमंद को ढूंढ़ना और उसकी मदद करना - यह भी नशा है। अच्छा नशा है। सुंदर नशा है। यह भी आनन्द देगा। सत् चित् आनन्द।

✦✦✦

Scanned with CamScanner

दूरी की माप

एक ड्राइवर ने एक देहाती से पूंछा - ''अगला पेट्रोल पंप कितनी दूर है?''
देहाती - ''कौवा की उड़ान के रास्ते 2 मील होगा।''
ड्राइवर - ''अगर वह कौवा पैदल चले और एक टायर को सड़क पर लुढ़काता हुआ चले, तो कितनी दूर होगा?''

जीभ

हमारी जीभ एक स्वचालित चेक प्वाइंट है। यह मानव शरीर के पेट में प्रविष्ट होने वाली हर चीज या खाद्य पदार्थ का लेखा जोखा रखती है। इसके लिये यह रजिस्टर, पेन का उपयोग नहीं करती है जैसा कि विभिन्न चेक प्वाइंट वाले नाकों में होता है। नाका या बैरियर मे बैठा चेकर ट्रक या वाहन को रुकवाता है। फिर देखता है कि उसमें क्या लदा है? किराना, कपड़ा, नमक, लाल मिर्च, नारियल, दवाई आदि। जो माल होता है उसकी इंट्री रजिस्टर में करता है। फिर वह रजिस्टर से माहवारी या साप्ताहिक योग लगाकर अपने वरिष्ठ कार्यालय को जानकारी देता है कि इस हफ्ते या माह में इतने क्विंटल किराना, मिर्च, शक्कर, कपड़ा आदि प्रदेश के अन्दर घुसा है। इससे सरकारों को यह आकलन करनेमें मदद मिलती है कि प्रदेश की जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति के लिये इतना माल काफी होगा या नहीं। यह और मंगाना पड़ेगा या फिर इसमें से कुछ बाहर भेजना पड़ेगा। (इससे कर वसूली में भी मदद मिलती है।)

जीभ का कार्य अत्यन्त सुचारु रूप से होता है। उसने अपनी जमीन (जीभ की ऊपरी सतह, दायें या बायें कोने या जीभ की नोक) में ही इस प्रकार प्वाइंट फिक्स कर दिये हैं कि उनके ऊपर से गुजरने वाली हर चीज का अंतर उसे मालूम पड़ जाता है। नमकीन, मीठा, खट्टा, कड़वा, कसैला, सादा - जैसा भी पदार्थ होगा, वह जीभ से होकर ही गुजरेगा। जीभ तुड़, मुड़ कर दायें बायें लोट पोट कर हर पदार्थ को अपनी सतह के बिन्दुओं से गुजारती है, और जैसा भी पदार्थ जितनी भी मात्रा में एक कौर या ग्रास में अन्दर प्रविष्ट हो रहा है उसकी तुरन्त रिपोर्टिंग मस्तिष्क को

Scanned with CamScanner

करती है। हफ्ते या माह का इन्तजार वह नहीं करती है। मस्तिष्क तुरन्त आकलन कर लेता है कि आज पेट के अन्दर कितनी मात्रा में खटाई गई है, कितना तेल गया है, कितनी शकर गई है, कितना लाल मिर्च गया है। जो मात्रा पेट में गयी है उसे कुचलने या पचाने के लिये कितने एसिड की आवश्यकता होगी। यह उन ग्रन्थियों को भी आगाह कर देता है जो पाचक रस निकालती हैं, भोजन को पचाती हैं तथा रक्त एवं ऊर्जा में इसे बदल देती हैं। इससे हमें जीवन मिलता है और शरीर चलता है।

सोचिए जरा - जीभ न होती तो क्या होता?

स्वाद न होता तो मनुष्य खाना ही नहीं खाता, या समय पर खाना भूल जाता। जीभ में एक प्रकार का आकर्षण होता है। आँख जब जलेबी या समोसा देखती है तो लार टपकने लगती है। यह जीभ की लालसा की वजह से होता है। वह मस्तिष्क को यह संदेश देती है, कि वह पैरों और हाथों को आदेशित करे कि वे जलेबी लेकर उसे दें जिसे वह रस मिलाकर पेट को सप्लाई करे। इसी प्रकार तीव्र अनिच्छा की प्रतिक्रिया को भी वह मस्तिष्क तक पहुंचाती है और चाहती है कि मस्तिष्क आदेश देकर शरीर को उन वस्तुओं से दूर हटा दे।

तो पहली बात तो यह है कि जीभ न होती तो लालसा भी न होती और मनुष्य भोजन करना भूल जाता। जब कभी याद आती तो खा लेता। परिणामतः शरीर कमजोर और बीमार रहता।

जीभ न होती तो चेक प्वाइंट न होता। हो सकता है मनुष्य शक्कर खाकर ही पेट भर लेता। या साबुन खा लेता। मिट्टी खा लेता या मदार के फल ही खा लेता। उसे इस बात का कोई भान न होता कि वह जो खा रहा है वह शरीरोपयोगी है भी या नहीं। हो सकता है शरीर इससे तत्काल मर जाता या कुछ समय बाद।

जीभ न होती तो हम बाल न पाते। कल्पना करिये। संसद भवन में बैठे सांसदों के जीभ ही नहीं है। फिर ध्वनि मत से कोई प्रस्ताव कैसे पारित होता? संसद सत्र शोर शराबे से भरा न होता। प्रश्नकाल भी नहीं होता। इशारें से प्रश्न किये जाते और मंत्री इशारों में ही जवाब देते।

जीभ, रसना, Tongue, जबान - कुछ भी कहें। कितनी भी बुराई करें इसकी। परन्तु यह एक अटल सत्य है। हमारे शरीर के लिये यह परमावश्यक अङ्ग है। भगवान किसी की जबान न छीने वर्ना फिर उसकी जबान फिसलेगी कैसे। जीभ लगेगी कैसे। आदमी चटोरा कैसे होगा।

जीभ है तो जीवन है।

✦✦✦

Scanned with CamScanner

वोटों की चालबाजी

पत्रकार (चुनाव में हारे सांसद से) - ''सिनेटर, आप चुनाव में अपनी हार का क्या कारण मानते हैं?''

सिनेटर - ''मैं चालबाजी का शिकार हुआ हूँ।''

पत्रकार - ''कैसी चालबाजी, सर।''

सिनेटर - ''वोटों की सही गिनती।''

अदुनियाँ

नई दुनियाँ, पुरानी दुनियाँ, छोटी दुनियाँ, बड़ी दुनियाँ, अच्छी दुनियाँ, बुरी दुनियाँ, अदुनियाँ आदि विभिन्न किस्म की दुनियाँ होती हैं। बाकी दुनियाँ तो जानी पहचानी लगती हैं परन्तु यह अदुनियाँ क्या है? अदुनियाँ वह दुनियाँ है जहॉ कोई दुनियां नहीं है। यह बियावान, भांय-भांय करती, लकलकाती दुपहरी में जल का आभास कराने वाली मृग मारीचिका की तरह की ऐसी दुनियाँ है जहॉ इन्सान अकेला होता है। उसका मन चारों ओर भटकता है। वह सबको टटोलता है। सबको देखता है। परन्तु वह पाता है कि उसे प्रेम करने वाला तो कोई नहीं है। उसके पास लगी भीड़ तो टाइप्ड है। उस भीड़ को उससे कुछ लेना देना नहीं है सिर्फ उसके स्वार्थ के अतिरिक्त। डाक्टर के पास की भीड़ क्या उसे प्रेम करती है? वक्ता संत के समक्ष पंडाल के नीचे बैठा भक्तों का हुजूम क्या उसे प्यार करता है? नेताजी के हाथ के साथ उठने वाले किराये के कार्यकर्ताओं के हाथ क्या उनसे स्नेह के परिचायक हैं? आफीसर की विदाई पार्टी के भाषण क्या मात्र औपाचरिक नहीं होते हैं? स्वार्थी होती है यह भीड़। सकून नहीं देती मन को। इससे अच्छी तो कलकत्ता की सड़कों की वह भीड़ होती है जो किसी एक लक्ष्य की ओर नहीं देखती है। सबके अलग टारगेट होते हैं। कम से कम वह भीड़ इन्सान को दुःख तो नहीं पहुंचाती है। क्यों? इसलिये क्योंकि मनुष्य उससे अपनापन नहीं जोड़ता है। जब अपनापन नहीं है तो परायापन कैसा। परायापन नहीं है तो उस भीड़ से अलगाव का दुःख भी नहीं सताता, ह्रदय में टीस भी नहीं उठती, जी नहीं तिलमिलाता, दिल का दौरा भी नहीं

पड़ता।

मनुष्य बड़ी मुश्किल से एक दुनियाँ बनाता है। वह उसकी अपनी दुनियाँ होती है। वह उसी में विचरण करता रहता है, उससे बाहर नहीं निकलता। वह उससे बाहर निकलना भी नहीं चाहता है। क्योंकि उस दुनियाँ में उसे रोटी, पानी, मान सम्मान, मनोरंजन आदि सब मिलता है। इसी से उसे सन्तोष मिलता है, जिससे उसे सुख मिलता है। वह चैन की नींद सोता है। जागता है तो फिर वही दुनियाँ उसके चतुर्दिक होती है। इसी प्रकार उसका वक्त कटता रहता है। परन्तु 'अदुनियाँ' - वह किसी को नहीं छोड़ती। हर इन्सान के जीवन की राह इस अदुनियाँ से होकर गुजरती है। यदि वह इसे पार कर जाता है तो फिर उसे मिलती है नई दुनियाँ।

मनुष्य अदुनियाँ में कब प्रवेश करता है? इसकी कोई उम्र नहीं होती, इसकी कोई शारीरिक अवस्था नहीं होती। यह स्त्री पुरुष, बालक, युवा, वृद्ध - सबको कभी न कभी अपने पास बुलाती है और उसके मन को, उसकी आत्मा को कोंच-कोंच कर कष्ट पहुँचाती है। मनुष्य अवाक् हो जाता है इस दुनियाँ में पहुँचकर। उसने तो इस दुनियाँ की कभी कल्पना ही नहीं की थी। स्वप्न में भी उसे यह ख्याल नहीं आया था कि जिस दुनियाँ में वह जी रहा है, वह एक दिन उससे छूट जायेगी। युवा पुत्र कह देंगे - ''पापा आपने हमारे लिये किया ही क्या है? आप तो अपने पैसों की दुनियाँ में ही मस्त थे। आपको इतनी फुर्सत ही कहाँ थी कि हमारी ओर देखें, हमारे साथ खेलें, हमें दुलार करें।'' अब यदि बच्चों की इस बात पर मनुष्य अवाक् न हो जायेगा तो वह करेगा क्या? क्या वह उन्हें बोलकर समझायेगा कि बेटा उसकी पैसों की दुनियाँ तो उन्हीं के लिये बनाई थी उसने। उनको सुख सुविधायें देने के लिये ही वह मन मारकर, अपनी आत्मा को मारकर उस पैसे की दुनियाँ में लगा रहता था। उसकी भी इच्छा होती थी कि वह उन्हें दुलार करे, प्यार करे, उनके साथ बात करे। उन्हें घुमाने ले जाये। वे मचलें तो उन्हें गुब्बारा या धूप का मरकरी वाला चश्मा खरीदकर दे दे। उन्हें झूला झुला दे या उनके साथ क्रिकेट खेले। मनुष्य सोचता था कि उसके बच्चों को यह एहसास है कि उनके पापा उनके लिये अपने मन को मारकर बाहर रहते हैं, कष्ट उठाते हैं, उनके लिये बलिदान कर रहे हैं। परन्तु यह तो उल्टा ही हो गया। उसके बच्चों ने तो यह सोचा ही नहीं जो उसने सोचा था। और अब बहुत देर हो चुकी थी। उसके बच्चे उससे दूर हो चुके थे। उसकी दुनियाँ उजड़ चुकी थी। इस दशा में मनुष्य को अदुनियाँ खींचने लगती है परन्तु वह पुरानी दुनियाँ से चिपका रहना चाहता है। सोचता है कि उसकी पत्नी तो उसकी है तथा उसके जज्बात समझती है, उससे प्रेम करती है। परन्तु यह क्या? पुत्र के नौकरी हेतु परदेश गमन के

Scanned with CamScanner

समय उसकी पत्नी भी उसे छोड़कर चली जाती है। कहती है ''पूरा जीवन गुजर गया तुम्हारी गुलामी करते-करते। अब बेटे के साथ रहूँगी कुछ दिन आजादी से। वहाँ तुम्हारी समय की पाबन्दी नहीं होगी, कोई अलार्म नहीं होगा।'' मजाक में कही गई बात मनुष्य को अन्दर तक चुभ जाती है और फिर एक झटके के साथ अदुनियाँ उसे अपनी ओर खींच लेती है। वह अदुनियाँ में प्रवेश कर जाता है। ऐसी अदुनियाँ जहाँ वह अकेला खड़ा होता है यह सोचता हुआ कि क्या उसने अपना जीवन व्यर्थ गंवाया पुरानी दुनियाँ में। उसने क्या खोया क्या पाया इस अन्तराल में? इस अदुनियाँ के कष्ट महारौरव नरक के कष्ट होते हैं, जहाँ आत्मा को लोहे के फर्श और दीवालों वाले कमरे में कैद कर नीचे आग जला दी जाती है। और फिर तपता लोहा आत्मा को छूता है। वह भागती है, दीवालों से टकराती है। वह भी तप्त है। वह नीचे गिरती है, छटपटाती है, परन्तु फर्श भी तो तप्त है। वह गिरती पड़ती रहती है। परन्तु मर नहीं सकती क्योंकि वह अमर है। वह चीखती है, चिल्लाती है, करुण क्रन्दन करती है परन्तु सब व्यर्थ। उसे अपने जन्म में किये गये पापों के अनुपात में सजा भोगनी ही पड़ती है, वहाँ रहना पड़ता है। इसी प्रकार पुरानी दुनियाँ से अदुनियाँ में प्रवेश करने वाला मनुष्य जीवित होते हुए भयंकर कष्ट पाता है। पुरानी दुनियाँ में जिसने जितना कुछ उस दुनियाँ के लिये किया है, जिसके अन्दर इस कृतित्व का जितना ज्यादा अहम् है, जिसको उस दुनियाँ से जितना ज्यादा मोह है, वह अदुनियाँ में पहुंचकर उतना ही ज्यादा कष्ट पाता है। वह उतना ही अधिक छटपटाता है। संभव्रतः इसी अदुनियाँ के कष्ट से बचने के लिये कृष्ण ने कहा है -

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरूषः।।

कर्तव्य मानकर कर्म करो। आसक्ति मत रखो। यदि पुरानी दुनियाँ में किये गये कार्यों को मनुष्य ने कर्तव्य मानकर किया होता तो अदुनियाँ उसे इतना कष्ट न देती। अदुनियाँ को पारकर उसे नई दुनियाँ न खोजनी पड़ती। नई दुनियाँ की खोज सिर्फ कोलम्बस ने ही नहीं की, हम सब एक दिन नई दुनियाँ खोजते हैं। कर्मचारी 30-40 वर्ष तक जिस दुनियाँ में रहता है, रिटायर होने पर वह दुनियाँ उससे छूट जाती है। फिर हर आँख उसे गैर की निगाह से देखती है, हर चेहरा उसे अपरिचित सा लगता है। वह पुराने जैसे जोश से हाथ मिलाता है परन्तु दूसरा हाथ ढीला होता है। तब उसे एहसास होता है कि वह तो पूरी दुनियाँ में अकेला है। परीक्षा में फेल विद्यार्थी, विवाहिता परन्तु सन्तानहीन स्त्री, व्यापार में सबकुछ खो चुका व्यवसायी, उम्र की मार से थका हुआ वृद्ध सब इस अदुनियाँ में ही विचरते हैं। वे नई दुनियाँ खोजने

Scanned with CamScanner

निकल पड़ते हैं परन्तु नई दुनियाँ नसीब वालों को ही मिलती है। फिर भी हमें आशा रखनी चाहिए कि नई दुनियाँ सबको मिलती है। अदुनियाँ को सब पार कर जाते हैं।

श्री कृष्ण का गीता सार सबको संतुष्टि देता है सब नई व स्थायी दुनियां में प्रवेश कर जाते हैं। वहाँ वास्तविक बड़प्पन, असीम सुख और आनंद होता है। यह आनन्द, सेक्स और अन्य ऐन्द्रिय सुखों के आनन्द से ज्यादा स्थायी होता है। नई दुनिया झूठे प्रेम से रहित होती है। यह भक्ति, सेवा, नाम, त्याग की दुनिया होती है। जीवन के इस पड़ाव में ये सब हमें बड़ी शान्ति देते हैं। ये हमें अदुनियाँ से मुक्त कर देते हैं।

✦✦✦

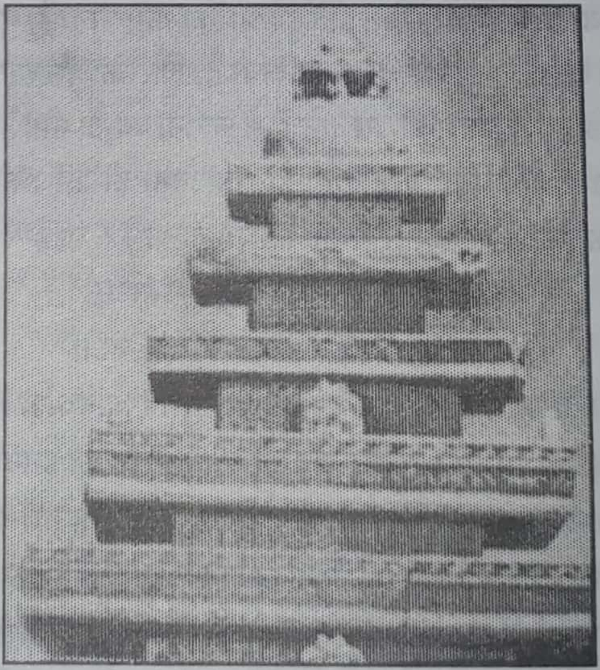

जज की सलाह

जज (कैदी से) - ''तुम बहुत चुपचाप हो और ढीले ढाले दिख रहे हो। मैं तुम्हे कोई वकील करने की सलाह देता हूँ।''

आजादी क्यों

काश्मीर को आजादी चाहिये। बस्तर को आजादी चाहिये। उल्फा नाराज हैं, उन्हें भी आजादी चाहिये। तमिलों को तमिल इलम चाहिये। पंजाबी सिख नाखुश रहते हैं, आसाम के सीमावर्ती भी अलगाव चाहते हैं। क्यों? क्या वाकई इन सबको आजादी चाहिये। इन्हें आजादी क्यों चाहिये? भारत की आजादी के समय 1947 में क्या हमने इन्हें अपने में गलत मिलाया था? क्या ये सब भारतीय संघ में गलत मिलाये गये थे? यदि नहीं तो फिर आजादी के अर्द्धशतक से अधिक व्यतीत होने के बाद इन्हें आजाद होने की आवश्यकता क्यों महसूस होने लगी है? क्या है वह जो यहां के नौजवानों को क्रांति की आवाज बुलंद करने के लिये अग्रसर कर रहा है? क्यों पैदा हुआ है पी.डब्ल्यू.जी.? क्यों बड़ा हुआ है नक्सलवाद का पौधा? क्यों उल्फा उग्रवादी सेना की नाकों में दम किये रहते हैं? क्यों कश्मीरी जिहादी और लिट्टे अपने प्राण न्यौछावर करके अपना संदेश हमें देते हैं?

गलती अवश्य हुई है वरना यह सब न होता। गलती होने का प्रमाण है यह सब अव्यवस्था जो हमें दिखाई देती है, रोज खबरों में सुनने को मिलती है, अखबारों में पढ़ने को मिलती है। अब तो आदत सी पड़ गई है यह सब पढ़ने और सुनने की। जिस दिन ये खबरें नहीं मिलतीं, उस दिन एक सूनेपन का एहसास सा रहता है, ऐसा जैसे हमने कोई खबर ही नहीं पढ़ी। अखबार सूना रहा है।

गलती। यह गलती कहाँ हुई है? कब हुई है? क्या इसे ऐसे सुधारा जा सकता है जैसे हम इसे सुधार रहे हैं? परन्तु इसके पूर्व एक कारण - क्या पाकिस्तान ने जिहादी पैदा किये हैं? क्या सिर्फ वही इसका जिम्मेदार है? क्या चीन और उसकी माओवादी संस्कृति ही उत्तर-पूर्व में अशांति की जिम्मेवार है? क्या श्रीलंका तमिल राष्ट्र की आवाज के लिये जवाबदेह है? क्या सी.आई.ए. और आई.एस.आई.

Scanned with CamScanner

(पाकिस्तान) जैसी संस्थाओं का मकड़जाल ही इसके लिये जिम्मेदार है? उत्तर है ''नहीं''। ये इस अव्यवस्था को बढ़ावा दे सकते हैं, तथा कथित उग्रवादियों और जिहादियों को हथियार और धन मुहैया करवा सकते हैं। परन्तु ये इन्हें पैदा नहीं कर सकते। इन्हें पैदा हमने किया है। हमारी गल्तियों ने इन्हें पैदा किया है। इनकी उत्पत्ति की जड़ें हमारे देश में ही हैं। हमारी व्यवस्था ने इन्हें जन्म दिया है। हम अपनी गलती पर पर्दा नहीं डाल सकते। हमें अपनी गलती का एहसास तहेदिल से करना ही होगा।

ये तो हुई सीमावर्ती क्षेत्रों की बातें। अब देश के अन्दर की अशान्ति। भारत का मुसलमान सशंकित क्यों रहता है? क्यों वह सशक्त वर्ग रहना चाहता है? क्यों वह लड़ने के लिये एक होने को तैयार रहता है? किसी एक मुसलमान से किसी हिन्दू का साधारण सा विवाद होते ही क्यों साम्प्रदायिक हिंसा भड़क उठती है? कारण है एक एहसास। अविश्वास। उनकी संस्कृति और धर्म के असुरक्षित रहने की धारणा। यह धारणा कैसे और क्यों पैदा हुई है? भविष्य में झांकने की फुर्सत आज किसी को नहीं है परन्तु एक नई पीढ़ी जन्म ले रही है जो भविष्य में परवान चढ़ जायेगी। उच्च शिक्षा प्राप्त सवर्ण बेराजगार युवकों की पीढ़ी। यदि पैसे-पैसे को मोहताज ये युवक सामाजिक व पारिवारिक प्रताड़ना सहते हुये आज अजीविका के नये आयाम तलाश कर रहे हैं, कोई दिशा न मिलने पर निराशा की स्थिति में आत्महत्या कर रहे हैं, छोटे मोटे अपरोधों की ओर आकर्षित हो रहे हैं, तो कल किसी भी उपयुक्त एजेन्सी के शिकन्जे में जकड़कर ये देश के लिये बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं। कोई ताकत इन्हें नहीं रोक पायेगी। यदि देश इन्हें रोटी नहीं दे सकेगा तो यह रोटी इन्हें जहाँ से मिलेगी वहाँ से इसे प्राप्त करेंगे। देश और राष्ट्र प्रेम की भावना इनके लिये कोई महत्व नहीं रखेगी। आज बिहार की रणवीर सेना इसकी शुरुआत है। सत्य से मुंह मोड़ने से कुछ नहीं होगा। गलती नहीं सुधरेगी समस्या का समाधान नहीं होगा। कुल मिलाकर आज देश के विभिन्न क्षेत्रों के युवकों का गुमराह होना, हथियार उठाना, उनके अन्दर की निराशा का परिणाम है।

कोई भी साधारण युवक प्राथमिक तौर पर अपने परिवार की खुशहाली में अपना योगदान देना चाहता है। अपनी बीवी बच्चों को, माता, पिता, भाई, बहन को खुशहाल देखना चाहता है। अपनी हैसियत के अन्दर उन्हें सुख सुविधायें मुहैया करवाना चाहता है। यह उसकी प्रबल इच्छा रहती है। जब वह इस इच्छा की पूर्ति नहीं कर पाता है, इसमें अपने आपको अक्षम पाता है तब एक प्रकार की कुंठा से ग्रसित होने लगता है। वह सोचता है कि क्या वह कुछ नहीं कर सकता है? क्या समाज के लिए उसका कोई मूल्य नही है? क्या वह समाज और अपने परिवार के

उत्थान में कोई योगदान नहीं दे सकता है? क्या उसका युवा शरीर, उसकी क्षमताएं, उसकी उच्च शिक्षा की डिग्रियाँ, सब बेकार हैं? उसकी सुबह माता पिता के तानों से शुरू होती है। वह घर में चाय पीता है, खाना खाता है तो मानो किसी के अहसान के बोझ से दबा रहता है। मानो भीख में प्राप्त खाना खा रहा है। भीख में प्राप्त कपड़े पहन रहा है। नौकरी ढूंढ़ने जाने के लिए राह खर्च के लिए दस रुपये मांगने में उसे शर्म महसूस होती है। संकोच में नीचा सिर किये जब वह अपने पिता से फार्म भरने के लिए पैसे मांगता है, तब मानो वह धरती में गड़ा सा जा रहा होता है। और फिर घर के अन्दर से आती आवाज सुनते-सुनते उसके कान पक जाते हैं। ''कुछ करो न'' ''कुछ करता है न धरता है इतना बड़ा हो गया है, पढ़ा लिखा दिया है फिर भी कुछ नहीं करता है, खाने को चाहिए तो कमाओ और खाओ।''

परन्तु उसे यह कोई नहीं बताता है कि वह क्या करे? कैसे कमाये? कमाने के लिए वह घर से बाहर निकलता है तो दिखता है अंधकार का एक विशाल साम्राज्य जहां वह अपने आपको अकेला और निर्बल पाता है। वह देखता है, वह सोचता है, क्या करे? क्या दुकान? - उसके लिये पांच लाख की पगड़ी लगती है। फिर दुकान के लिये पूँजी अलग से। 8 लाख का इंतजाम कैसे करे। क्या नौकरी? - वह पाता है, नौकरियां अत्यंत सीमित हैं उनमें आधी आरक्षित हैं। शेष के लिए भयंकर स्पर्धा है। प्रारंभिक परीक्षा और मुख्य परीक्षा पास कर लेने के बाद भी ऊंची सिफारिश और काफी पैसा लगता है। कहां से लाये सिफारिश, कहां से लाये पैसा? अधिकांश तो पहली सीढ़ियां ही नहीं चढ़ पाते हैं। क्या मजदूरी? - सिर में गिट्टी का तसला उठाये हुए, फावड़ा से जमीन खोदते, कुलीगिरी करते, रिक्शा चलाते, बूट पॉलिश करते, जब परिवार वाले और उसके दोस्त उसे देखेंगे तो क्या कहेंगे? आदि-आदि। लंबी कहानी है बेरोजगारी की। यही सब सोचते देखते रात हो जाती है। वह बुझे मन के साथ घर लौटता है और फिर वही सब कुछ। कुंठा और निराशा। बस और कुछ नहीं। क्या ऐसा युवक देश से प्रेम करेगा? भूखे पेट रहते हुए लोग अपनों से भी प्रेम नहीं करते। सामान्य युवक तो कभी नहीं।

इन युवकों की अधिकांश संख्या मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग में है। उच्च वर्ग का युवक उग्रवादी नहीं बनता है। वह भावना में बहकर किसी मजबूरीवश उनका साथी हो सकता है परन्तु उनकी मुख्य धारा का अंग नहीं होता है।

अब फिर वही प्रश्न। आजादी क्यो? उत्तर स्पष्ट है। आजादी चाहिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था से जो समाज की इकाई परिवार को खुशहाल बनाने में अक्षम है। उनका विचार है कि छोटा राज्य बनने पर, अलग छोटा राष्ट्र बनने पर संभवतः वे

Scanned with CamScanner

युवक ऐसी व्यवस्था का निर्माण कर सकेंगे जिसमें उनकी इच्छित खुशहाली उन्हें मिल पायेगी। उन्हें सुरक्षा मिल पायेगी। यह धारणा उनके मन में घर कर जाती है। तो फिर क्या ऐसा किया जाये कि ये युवक हमसे अलग भी न हों, हमारे बने रहें और कुंठित भी न रहें, हथियार भी न उठायें। क्या सेना और पुलिस की मदद से इन्हें कुचल दिया जाये? कितने कुचलेंगे? जिस अव्यवस्थित समाज में प्रति वर्ष हजारों युवक 18 वर्ष की उम्र प्राप्त कर लेते हैं और निराश युवकों की पक्ति को और लंबी कर देते हैं, वहां यह तो तभी संभव है जब कंस बन जाया जाये। फरमान जारी कर दिया जाये कि जो लड़का 18 वर्ष की उम्र पार कर ले उसे मार दिया जाये। फांसी पर लटका दिया जाये। न रहेगा युवक और न पैदा होगा जेहादी और आतंकवादी।

यह महज व्यंग्य है। समाधान नहीं है।

तो फिर कैसे निर्मित हो वह समाज जिसमें कुंठित, भ्रमित, निर्बल युवक न हों। बेरोजगारी न हो। सबको यथा योग्य काम हो।

इसके लिए चाहिए सामाजिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन। परिवर्तित ऐसी शिक्षा प्रणाली जो पढ़े-लिखे युवकों को रोजगार मुहैया करवा सके। इसका विस्तार फिर कभी। यह तो मात्र प्रारंभ है। उत्तर है ''आजादी क्यों'' का।

✦✦✦

Scanned with CamScanner

तलाश

एक चोर एक गरीब पादरी के घर चोरी करने घुसा ही था, कि पादरी जग गया और उस कमरे में आ गया। चोर हड़बड़ा गया परन्तु हथियार निकाल कर पादरी को धमकाते हुए बोला - ''अगर तुम आगे बढ़े तो अपने को मरा हुआ पाओगे। मैं तुम्हार धन ढूंढ़ रहा हूँ।''
पादरी बोला - ''कृपया मुझे रोशनी कर लेने दो। मैं भी तुम्हारे साथ ढूँढूगा।''

वैराग्य

इंग्लैण्ड में गृह त्यागी वैरागी नहीं होते। क्यों? इसलिये कि वहाँ सभी वैरागी होते हैं। प्रारंभ से ही वैराग्य होता है उन्हें। वे अपनी छोटी सी दुनिया पत्नी और संतान वाली नही बनाते हैं। बनाते भी हैं तो एक घर में ही अलग अलग जीते हैं सब। वहाँ बच्चे भी वैरागी होते हैं। पत्नी भी वैरागी होती है। अंग्रेज बच्चा नर्सरी में पलता है। वहाँ की धाय मशीनी अंदाज में उसका मुख पोंछती है। एक ही अंदाज में वह सभी बच्चों के मुख पोंछती है। क्योंकि कोई बच्चे उसके अपने नहीं होते। उसके बाद हास्टल और स्कूल में रहता पढ़ता बच्चा बड़ा होता जाता है। छुट्टी के दिनों में उसके माम और डैड उससे मिलने आते हैं। वह सूनी निगाहों से उनकी ओर देखता है, क्योंकि वह जानता है कि अभी वे चले जायेंगे। वे लौट जायेंगे अपने बसेरे की ओर। और वह फिर रह जायेगा अकेला - बिन माँ बाप का बच्चा। उसके हाथ में कुछ लग जाने पर कोई उसके हाथ को सहलाते हुए फूंक मारकर उसके दर्द को दूर करने का प्रयास करने वाला कोई नहीं होगा। वह खुद ही हाथ को झटकेगा, सहलायेगा, दबाकर रखेगा और फूंक मार लेगा। फिर उस दर्द को भूलने का प्रयास करेगा। दूसरे काम में मन लगा देगा। यही उसकी जिन्दगी है जहाँ उसका अपना कोई नही है। वह अपने माम, डैड से इसकी आशा भी नहीं करता। यदि प्राकृतिक रूप से आशा की कोई किरण उसके बाल मन में जन्मती भी है तो वह शीघ्र ही उसे मार भी देता है। क्या यह बच्चा वैरागी नहीं है? उसने घर छोड़ा है, माम और डैड को छोड़ा है, और छोड़ा है प्यार पाने की आशा को। निकाल फेंका है उसने दुलार पाने की इच्छा को।

Scanned with CamScanner

वह स्वयं भी एक मशीन हो गया है। निर्जीव मशीन है वह। मशीन के भावनायें नहीं होती हैं। वह किसी से प्रेम नहीं करती है। तो अंग्रेज बच्चा वैरागी होता है।

उसके माम और डैड भी वैरागी होते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं - रजिस्ट्रार ऑफिस में जाकर अपने विवाह का रजिस्ट्रेशन करवाकर वे अपने मध्य संविदा कर लेते हैं और फिर चर्च में जाकर पापियों को क्षमा कर देने वाले क्रूस पर लटके प्रभु ईसा मसीह के समक्ष नमन कर पादरी की शुभकामनायें ले लेते हैं बस हो गया विवाह। आसान विवाह, आसान तलाक। एक दूसरे से मन भर गया तो तलाक हो गया। अपनी अपनी नौकरी है, अपना अपना पैसा है, अपना अपना दफ्तर है। अलग अलग बसों के रास्ते हैं, अलग अलग टिफिन हैं। निष्काम भाव से जीते हैं दोनों। यह वैराग्य नहीं तो और क्या है। अपनत्व नहीं है तो वैराग्य है। आपस में प्रेम व विश्वास नहीं है तो घर भी नहीं होता है। जब घर ही नहीं है तो काँक्रीट की दीवारों से घिरे खोखले क्यूब में रहने वाले स्त्री और पुरुष वैरागी ही तो हैं। इसीलिये मैं कहता हूँ कि इंग्लैण्ड में किसी को गेरुआ वस्त्र पहनकर एक दिन घर छोड़कर जाना नहीं पड़ता है। वे तो सदा साधु हैं। सभी संत हैं। सभी वैरागी हैं। वहाँ वृद्धाश्रम, विकलांग आश्रम बहुत हैं। उनमें रहने वाले यह दुःख नहीं करते कि वे अकेलेहो गये हैं। क्योंकि वे तो सदा अकेले थे। उन्होंने वह छोटी सी दुनियाँ बनाई ही नहीं थी जिसका आधार प्रेम व विश्वास होता है, ममता और दुलार होता है। इसलिये उन्हें कोई कष्ट नहीं होता। इसीलिये उनकी आंखों से अश्रु नहीं बहते। वे तो अकेले जीने के आदी होते हैं।

कहते हैं कि इंग्लैण्ड के निवासी भारत आते हैं योग के लिये, वैराग्य के लिये, आध्यात्म के लिये, शान्ति के लिये। मैं सोचता हूँ कि उनके पास यह सब कुछ होता है परन्तु इसके लिपिबद्ध सिद्धान्त नहीं होते हैं। उनके पास ठोस आधार नहीं होता है। भारत में हमने इन पर खूब लिखा है। क्योंकि लिखने के लिये खूब समय मिला है हमें। 30-40 वर्षों के बाद जवानी ढलने पर जब हमें समझ आई है तब हम वैराग्य की ओर मुड़े हैं। उसे पुख्ता करने के लिये आध्यात्म और योग का सहारा लिया है। अतः भारत के लोगों के पास पर्याप्त समय होने से इन पर खूब ग्रन्थ लिखे गये हैं। अंग्रेज जब इन ग्रन्थों को पढ़ते हैं तो उन्हें बड़ी शान्ति मिलती है। क्योंकि जो जिन्दगी वे जिये होते हैं उस पर 'सही' की छाप लग जाती है। वें पाते हैं कि वे सही दिशा में जिये हैं, बेवकूफ नहीं बने हैं। इस शान्ति को वे यहाँ पा जाते हैं।

✦✦✦

Scanned with CamScanner

बचत

एक स्काट (स्काटलैंड का निवासी) एक दुकान में गया और एक ब्रीफकेस खरीदा।

क्लर्क - ''मैं इसे आपके लिये पैक कर देता हूँ।''

स्काट - ''धन्यवाद, नहीं, सिर्फ कागज और डोरी इसी के अन्दर रख दें।''

♦♦♦

हाकर

ये गुरू हाकर हैं। जैसे हर मोहल्ले में कई कई हाकर अखबार बाँटते हैं वैसे ही ये गुरु सभी मुहल्लों, शहरों और नगरों में अपने चेले बनाकर उन्हें ज्ञान बाँटते हैं। होना तो यह चाहिये कि एक हाकर एक ही मुहल्ले में अखबार बाँटे। उसका यह मुहल्ला तय हो जाय। इससे ममय और श्रम दोनों की बचत होगी। ये गुरु भी बीच-बीच के ताली बजाने वाले इकट्ठे न करें। इनके भी शहर, ग्राम, मुहल्ले तय हो जायें तो बहुत सहूलियत होगी। इन्हें ज्यादा नाटकीयता का सहारा न लेना पड़ेगा। फिर ये वास्तविक ज्ञान बाँटेंगे। ईमानदारी से ज्ञान बांटने की एक ही कसौटी होगी कि प्रतिदिन की उपस्थिति कम से कम 333.3 की है।

हमारे देश की जनसंख्या 100 करोड़ से ऊपर है। प्रत्येक 10000 व्यक्तियों को एक गुरु बंटवारे में मिल जाय तो एक लाख गुरुओं को रोजगार मिल जायेगा और जनता को संतोष। प्रत्येक व्यक्ति यदि इस संतोष की कीमत एक रुपया मासिक भी दे तो दस हजार रुपये मासिक की तनखाह गुरु की हो जायेगी जिससे वह अपनी तथा 3-4 चेलों की भरणपोषण व्यवस्था आसानी से कर लेगा। कोई अन्य गुरु उसके क्षेत्र में दखल न दे, इसकी व्यवस्था कानून बनाकर शासन कर दे।

शासन ने रोजगार हेतु विभिन्न क्षेत्र खोजे हैं - बैंक मैनेजमेंट, कन्सल्टेंसी, फैशन डिजाइनिंग आदि। इन्हीं की तरह आध्यात्मिक संतोष की प्राप्ति हेतु गुरु निर्माण भी एक क्षेत्र है। यह आज की जनता की मांग व चाहत है। हर कोई तनाव में रहता है। जिसके पास काम है वह काम के तनाव में रहता है और जिसके पास काम नहीं है वह बेरोजगारी के तनाव में रहता है। अतः तनाव मुक्ति का प्रयत्न रोजगारपरक कार्य हैं।

♦♦♦

Scanned with CamScanner

समय की कीमत

जज - ''तुम्हें 19 आरोपों का दोषी पाया गया है। अतः तुम्हें 99 वर्ष की जेल की सजा दी जाती है। क्या तुम्हें कुछ कहना है?''
मुलजिम - ''इसके अलावा कुछ नहीं, जज, कि आपके लिये दूसरे के समय की कोई कीमत नहीं है।

जूनियर रिटायर्ड

एक सीनियर रिटायर्ड रह गये। दूसरे 'कहाँ जाऊँगा' सोच रहे हैं। तीसरे चले गये उत्तर दिशा की ओर। और मैं, जूनियर रिटायर्ड अभी तड़प रहा हूँ, तप रहा हूँ, जल रहा हूँ। 40 वर्षों का अहं तथा स्वाभिमान चकनाचूर होते देख रहा हूँ। बार बार उसे उभारता हूँ। लोग उसे दबा देते हैं। मैं फिर कसमसाकर उठने का प्रयास करता हूँ। लोग फिर मुझे दबा देते हैं। मेरे अहं को, मेरे स्वाभिमान को बार बार कुचलते हैं। लगता है, चालीस साल से मेरी आँखें बंद थीं और मैं एक स्वप्न देख रहा था। अभी भी नहीं खुली हैं। जब आँखें खुल जायेंगी। तब मेरा भी प्रमोशन हो जायेगा। मैं भी सीनियर रिटायर्ड हो जाऊँगा। और फिर किसी दिशा की ओर बढ़ जाऊँगा। और चलता रहूँगा तब तक जब तक जीवन यात्रा का विराम बिन्दु नहीं आ जाता।

अभी तो कशमकश चल रही है। घर में और बाहर। जब मुझे महत्वहीन समझकर लोग एक रूखी नजर मुझ पर डाल कर दूसरी ओर देखने लगते हैं, दूसरों से बात करने लगते हैं, पहचानते हुये भी नहीं पहचानते हैं तब लगता है - मैं क्या था? मैं कुछ था भी या नहीं? आज मैं क्या हूँ? मैंने विगत जीवन में क्या खोया? क्या पाया? कुछ पाया भी या नहीं? क्या सिर्फ खोया ही है? अपने को जलाते हुये, अपने को दौड़ाते हुये अपने को तिल-तिल कर मिटाते हुये जिसे जो कुछ भी मैंने दिया है, क्या उसका कोई रिटर्न नहीं है! क्या पाने वाला आज उसे मुझसे पाया हुआ मानता है? या वह उसे मुझसे छीना हुआ मानता है। रिटर्न भी क्या - मात्र चन्द शब्द 'तुमने बहुत दिया, हमने बहुत पाया'। कोई शब्दों से भी वापसी को तैयार नहीं।

Scanned with CamScanner

पैसा, रुपया, सेवा तो दूर की बात है। तो फिर क्या यह मान लूँ कि 40 वर्षों का जीवन व्यर्थ गया, स्वप्न टूट गया! नष्ट हो गया जीवन! क्या पश्चाताप करूं? कुछ न कर सका अभी तक। यदि किया होता तो कुछ तो सामने होता आज। फिर अब क्या करूँ? क्या नये जीवन की शुरुआत करूं? भूल जाऊँ भूत को एक स्वप्न मानकर और सीनियर रिटायर्ड हो जाऊँ। शायद यही ठीक रहेगा।

✦✦✦

Scanned with CamScanner

(State) स्टेट का अर्थ

अंग्रेजी में स्टेट का अर्थ 'राज्य' व 'दशा' दोनों होता है

जनगणना कर्मचारी - ''जब तुम पैदा हुयी थीं तो किस State में थीं?

शर्माती महिला - (हिचकिचाते हुए) जी-जी मैं नंगी थी।

स्वावलोकन

एक स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा निवास करती है। स्वस्थ आत्मा स्वस्थ सोच को जन्म देती है। इससे मनुष्य अपने जीवन में अच्छे निर्णय लेने में सक्षम होता है। उसके आगे बढ़ते कदम सही दिशा की ओर बढ़ते हैं। उसे अच्छे और बुरे व्यक्ति की पहचान होती है। उसे भिन्न भिन्न स्तर के व्यक्तियों से अलग अलग प्रकार से बात करने की तहजीब आती है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह होती है कि वह अपनी बातचीत से लोगों को प्रभावित कर लेने में सक्षम होता है। इससे उनका उपयोग कर वह अपने जीवन को सुखदायी बना सकता है, उसका नाम होता है, तथा उसका प्रभाव क्षेत्र बढ़ता है और समाज में आदर प्राप्त होने से उसे मानसिक संतुष्टि प्राप्त होती है, तथा भविष्य के कार्यों के लिये उसका मनोबल और बढ़ता है।

इसके विपरीत एक रुग्ण शरीर में निवास करने वाली आत्मा भी रोगी होती है। एक रोगी की सारी सोच उसके रोग तक ही सीमित होती है। उस रोग से उत्पन्न पीड़ा से वह कराहता रहता है, तथा किसी प्रकार घिसट कर अपनी जिन्दगी बसर करता हुआ वह व्यक्ति एक दिन काल के गाल में समा जाता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं के लिये भी बोझ होता है। उसका परिवार भी उसकी तीमारदारी में परेशान रहता है और एक दिन उसका साथ छोड़ देता है। समाज को तो वह कुछ दे ही नहीं सकता है अतः समाज भी उसकी ओर से आँख बंद कर लेता है। कुल मिलाकर एक रोगी का जीवन व्यर्थ होता है।

अतः एक अच्छे जीवन के लिये स्वस्थ शरीर का होना अत्यावश्यक है। बहुतेरे उपाय बताये गये हैं और बताये जाते हैं स्वास्थ्य को अच्छा रखने के। वे सब अच्छे उपाय हैं लेकिन उनकी अधिकता से व्यक्ति भ्रमित हो जाता है और निर्णय

Scanned with CamScanner

नहीं कर पाता है कि वह क्या करे? योगासन करे अथवा अखाड़े में जाकर दंड बैठक लगाये या प्रातः भ्रमण करे तथा जागिंग करे। तेल मालिश करे या त्रिफला सर पर मले। चेहरे में बेसन का उबटन लगाये या चन्दन हल्दी का लेप करे। सात्विक आहार मूंग की उबली दाल, उबली लौकी की सब्जी और बिना चुपड़ी रोटी खाये या फिर भोजन के पूर्ण तत्वों कार्बोहाइड्रेट, वसा, पानी आदि तत्वों वाला भोजन करे। अण्डा खाये या हरी पत्ती पालक मेथी बथुआ खाये। भिगोये फूले अंकुरित चना या मूंग की दाल खाये या सुबह ताँबे के लोटे में भरा पानी पी जाये और पेट साफ रखे। वह क्या करे? क्या वह सभी करे!

मेरे मतानुसार स्वस्थ और निरोगी रहने का सिर्फ एक उपाय है, और वह है भी बहुत सरल। समय चाहिये मात्र 5 मिनट का। हाँ एक दर्पण भी चाहिये है इसमें। वह उपाय है - स्वशरीरावलोकन - अर्थात अपने शरीर को, उसके अंग प्रत्यंग को देखना तथा प्रेमपूर्वक उनका स्पर्श करना। स्नानोपरांत स्नानगृह में दर्पण के समक्ष खड़े होकर अपने सिर के बालों से प्रारंभ करते हुये ललाट, नयन, नासिका, गाल, मुख, दन्त, जिह्वा, कान, गला, ठुड्डी, दाड़ी के बाल, ओष्ठ, दोनों कंधे, वक्ष, चिबुक, पेट, बगलें, कटि, जंघा, घुटना, पिंडली, पैर का पंजा तथा तलवा का प्रेमपूर्वक दर्शन करें। उन्हें करतल तथा अंगुलियों से प्रेमपूर्वक स्पर्श करें, इसके बाद जहाँ तक शरीर मुड़ सके उसे मोड़कर अपनी पीठ, नितम्ब, जाँघ का पिछला हिस्सा के दर्शन भी अवश्य करें तथा यथा संभव प्रेमपूर्वक उनका स्पर्श करें। सोचें कि प्रकृति ने आपके शरीर को कितना सुन्दर बनाया है। उसके अंङ्ग प्रत्यंगों की कितनी सुन्दर रचना की है। ये सब कितने सुन्दर हैं। प्रकृति की यह अद्वितीय सृष्टि है। सोचो सम्पूर्ण ब्रह्मांड में इस जैसा दूसरा नहीं। अद्वितीय हमेशा सुन्दर ही होता है। जरूरत है उसे जानने व महसूस करने की।

श्री सत्य साईं बाबा कहते हैं - ''तुम भगवान हो। परन्तु तुम यह जानते नहीं हो। मैं जानता हूँ कि मैं भगवान हूँ।'' बस यही अन्तर है। तो उस सुन्दरता को महसूस करें। बस दैनिक या हफ्ते में एक दिन यह करने पर व्यक्ति इस अद्वितीय कृति को फिर गंदा थोड़ी होने देगा। फिर वह मोटापा को बढ़ने नहीं देगा। फिर वह अपने किसी भी अंङ्ग का दुरुपयोग नहीं करेगा। जीवन संतुलित होगा जिससे स्वास्थ्य लाभ होगा। अतः स्वावलोकन स्वास्थ्य की कुंजी है।

◆◆◆

Scanned with CamScanner

झोला छाप

एक झोला छाप डाक्टर एक शक्तिवर्धक दवा बेंचते हुये बोल रहा था कि उस दवा से उम्र बहुत लम्बी हो जाती है।

उसने जोर से घोषणा की - ''मुझे देखो! मैं स्वस्थ व प्रसन्न हूँ। मेरी उम्र 300 वर्ष है!

सुननेवालों में से एक ने उसके सहायक से पूँछा - ''क्या हकीकत में वह 300 वर्ष का है?''

सहायक ने जवाब दिया - ''कह नहीं सकता! मुझे उसके साथ काम करते अभी 100 वर्ष ही हुये हैं।''

भावना का संघ

मैं हर समस्या का हल पृथ्वी पर हो रही समग्र हलचल के परिप्रेक्ष्य में देखने व ढूंढ़ने का प्रयास करता हूँ। यदि कोई हल इसमें (समग्रता में) फिट नहीं बैठता है तो मैं असंतुष्ट रहता हूँ।

बुजुर्गों के अकेलेपन से मैं स्वयं भी पीड़ित महसूस करता हूँ। कभी कभी कुछ लिखता भी रहता हूँ। फिर बार बार पढ़ते रहने पर ऊब जाता हूँ। सोचता हूँ वही एक ही रोना - बार बार अलग अलग किस्म के अकेलेपन को अनुभव करना। आज मैंने मार्निंग वाक के समय सोचा, आखिर ऐसा क्यों है? मैं अकेला तो ऐसा नहीं हूँ जो इस अकेलेपन से पीड़ित हूँ, व अपने को अपमानित महसूस करता हूँ, तथा अपेक्षित Response न मिलने पर दुःखी होता हूँ। इस समाज में और भी लोग हैं जो मेरे जैसे हैं। या यूं कहें कि समाज के सभी बुजुर्गों का यही हाल है। वे गरीब हैं या अमीर, मोटे हैं या दुबले, धर्म गुरू हैं या माफिया डान - इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है। वास्तव में बुजुर्गों की एक अलग ही जाति है। पेंशनरों का एक अलग ही समाज है। वह एक ही जैसे माहौल में जीता है। एक ही जैसा सोचता है। एक ही जैसा खाना खाने को बाध्य होता है।

अगर मैं अकेला ही यह दुःख और त्रासदी झेल रहा होता तो अपने पुत्र को

Scanned with CamScanner

दोषी मान लेता। परन्तु जब बुजुर्गों का पूरा समाज इस दुःख से पीड़ित है, तो इसका कारण अकेला मेरा पुत्र नहीं हो सकता। और यदि कहें कि सभी के पुत्र अपने बुजुर्ग माता-पिता का ध्यान नहीं रखते हैं, उन्हें सम्मान या अपमान के साथ दो रोटी नहीं परोसते हैं, उनके मरने का इन्तजार करते हैं, उनकी हर बीमारी पर उनकी आशायें जाग उठती हैं, यदि चीन का Use and throw मटीरियल होता तो वे इन्हें कचरे के ड्रम कें डाल देते। परन्तु वे इन्सान हैं, अतः उन्हें डस्टबिन के हवाले भी नहीं कर सकते। उनके पास अब एक ही तरीका है इस बुजुर्ग रूपी कचरे के निस्तारण का। और वह है उनकी बीमारी से मृत्यु। अतः यही उनको आशा की किरण दिखायी देती है। यदि ऐसी सोच सभी युवा पुत्रों की है तो प्रश्न है कि आखिर ऐसा क्यों है? इसका जवाब पाने का प्रयास करता हूँ, तो पाता हूँ कि जब एक जैसी सोच, एक जैसे कार्य बहुत लोगों के होते हैं तो फिर ये उनके निजी नहीं होते हैं। वे कार्य एक बहाव के आधीन किये गये होते हैं जिस पर उनका वश नहीं होता है। हिन्दुस्तान का आज का युवा इसी प्रकारके प्राकृतिक और सामाजिक बहाव के आधीन बह रहा है, और उनका यही बहाव बुजुर्ग समाज को पीड़ा पहुंचा रहा है। यह बहाव कैसा है?

जनसंख्या वृद्धि से स्पर्धा बढ़ी है। एक नौकरी या एक रोजगार के लिये सैकड़ों प्रतिस्पर्धी हैं। उनमें से कोई 1 नौकरी पा जाता है। कोई 1 रोजगार पाने में सफल हो जाता है। शेष फिर भागमभाग में लग जाते हैं। उनके जेहन में भावना (माता पिता के लिये) का कोई स्थान नहीं होता है। होती है तो सिर्फ अस्तित्व की लड़ाई की भावना। इसके अतिरिक्त उन युवाओं के लिये आज पूरा विश्व छोटा हो गया है। आवागमन के साधन इन्टरनेट आदि साधनों ने उनकी उन्नति की आशाओं को और बढ़ा दिया है। 6 लाख वार्षिक का किसी बहुराष्ट्रीय कं. का पैकेज उन्हें आज संतुष्ट नहीं करता है। वे सोचते हैं यदि उनकी पत्नी का पैकेज भी 6 लाख का हो तो उनका स्टेटस 12 लाख के पैकेज वाले के तुल्य हो जायेगा। अतः वे ऐसी ही शादी करते हैं।

इसके अलावा और भी एक बात है, और वह है सभ्यता। हमारी सभ्यता का हर सोपान हमें पश्चिम की ओर धकेल देता है। यदि पाश्चात्य देशों में बुजुर्गों का सम्मान जैसी चीज अब भूतकाल की चीज हो गयी है तो निश्चित ही हमें भी उसकी कम से कम एक दो सीढ़ी तो चढ़ना ही है तभी हम अधिक सभ्य कहलायेंगे। यह है युवा सोच।

मैंने जिस प्राकृतिक व सामाजिक बहाव की बात पीछे कही है मैं उसी बहाव की एक छोटी सी तस्वीर खींचने का प्रयास कर रहा था। हमारा युवा इस

Scanned with CamScanner

बहाव के अधीन बहता हुआ कैसे अपने माता-पिता के लिये समय, श्रम व अपनी भावना दे सकता है। वह तो एक बहाव के अधीन है।

फिर क्या हो? युवा के पास उत्तर यह है कि आधुनिक युग टीम वर्क का युग है। क्रिकेट की टीम, वैज्ञानिकों की टीम, श्रमिकों के संघ, कर्मचारियों के संघ, अधिकारियों के संघ, न जाने कितने संघ बने हैं। क्यों? इसलिये कि एक अकेले की आवाज किसी को सुनाई नहीं देती। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। इसीलिये हम हर कार्य टीम वर्क से करते हैं। फिर युवा अकेले अपने बुजुर्गों की देखभाल क्यों करे?

इसीलिये युवा ने अपने बुजुर्गों के प्रति प्रेम की भावना, सेवा की भावना अपने दायित्व या फर्ज की भावना का भी संघीकरण कर दिया है। आज के युवा ने अपने माता पिता के लिये सैकड़ों वृद्धाश्रम, विकलाङ्गाश्रम खुलवा दिये हैं, उसने काशी, अयोध्या, हरिद्वार जैसे तीर्थों में ऐसे आश्रम खुलवा दिये हैं, जहाँ रहकर बुजुर्ग अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं। और मृत्यु का वरण कर सकते हैं। आज का युवा अपनी तुष्टि के लिये इन आश्रमों को चंदा दे देता है। आज का युवा कर्मचारियों की एक टीम तैनात कर देता है जो बुजुर्गों की देखभाल करे व उनके पुत्र प्रेम की भावना को संतुष्ट करे। भावना के ये संघ - ये आश्रम - कचरे के बड़े ड्रम हैं, जिनमें जीवित बुजुर्ग कीड़ों जैसे बुलबुलाते रहते हैं। और उन्हीं में मरते खपते रहते हैं।

परन्तु मेरी बात तब तक पूरी नहीं होती जब तक इस बहाव का संबंध पृथ्वी की समग्र हलचल से नहीं होगा। मैं इस प्रकार सोचता हूँ कि दो प्रकार के वृद्ध या बुजुर्ग मरते हैं। एक वे बुजुर्ग जिनके सिरहाने पर उनका युवा पुत्र बैठकर उनका सिर दबा रहा होता है या जिनके प्यास लगने पर अपने हाथ से वह एक लोटा पानी पिला देता है। असहायता में वह एक एक कौर रोटी को उनके मुख में रख देता है। जिनके मरने पर भरे मन से वह उनके पार्थिव शरीर को कंधा देता है। और दूसरे वे बुजुर्ग जो अपमान, भूख और अकेलेपन की त्रासदी को झेलते हुये मरते हैं, इन तथाकथित आश्रमोंमें रहकर स्वर्गवासी होते हैं। ये क्रमशः संतुष्ट व असंतुष्ट वृद्ध होते हैं।

उक्त दोनों प्रकार के बुजुर्गों की हड्डियों का यदि वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो दोनों प्रकार की हड्डियों में पृथक-पृथक फास्फोरस या रसायन मिलना चाहिये। वर्तमान में पृथ्वी को अपने शरीर की वृद्धि के लिये या किसी हीलिंग के लिये उस रसायन की ज्यादा जरूरत है जो अकेलेपन, भूख और अपमान से मरने वाले असंतुष्ट बुजुर्गों की हड्डियों में मिलता है। विज्ञान के शोधार्थी के लिये यह एक शोध का विषय है।

Scanned with CamScanner

पृथ्वी इसी विशिष्ट रसायन को प्राप्त करने के लिये जैव मंडल में मानव जाति की सोच को विशेष प्रकार से नियंत्रित करती है इस सोच के लिये Global Warming पैदा करती है, चिड़चिड़ाहट और गुस्सा पैदा करती है कोमल भावनाओं को नष्ट करती है, जनसंख्या बढ़ाती है। इससे उसे प्रेम पिपासु वृद्धों का अस्थि रसायन मिल जाता है।

अन्त में बुजुर्गों की पीड़ा के लिये मैं युवा वर्ग को दोषी नहीं पाता हूँ। और यह भी कि इस समस्या का फिलहाल कोई हल नहीं है। पृथ्वी का घाव जब भर जायेगा तब फिर कोमल भावनायें पैदा हो जायेंगी। अपने आप जनसंख्या भी कम हो जायेगी। उस विशिष्ट रसायन की आपूर्ति हो जायेगी तो भावनाओं का ऐसा बहाव स्वयमेव समाप्त हो जायेगा। बुजुर्गों का अकेलापन भी मिट जायेगा, क्योंकि तब पृथ्वी को उनकी विशिष्ट हड्डियों की जरूरत नहीं रह जायेगी। यह कब तक होगा? समय अज्ञात है।

वकालत

पहला वकील - "योर आनर, अब मैं डैनियल वेब्स्टर के शब्दों का उद्धरण दूँगा। उन्होंने ही यह शब्दकोष बनाया था।"

दूसरा वकील - "उनका नाम 'नोह' था 'डैनियल वेब्स्टर, नहीं।"

पहला वकील - "नोह ने तो जल प्रलय के समय नाव बनायी थी सब प्राणियों की जाति बचाने के लिये।"

इन्द्रिय दमन

किसी भी धार्मिक प्रवचन में इन्द्रिय दमन की शिक्षा दी जाती है। संत महात्मा अपने भक्तों एवं श्रोताओं को परमात्मा से मिलन की शर्त के रूप में इन्द्रिय निग्रह किये जाने की बात कहते हैं। बिना इसके आत्मज्ञान तथा परमात्मा से मिलन संभव न होना बताया जाता है। भगवान कृष्ण ने भी गीता में इन्द्रियों को वश में करने की बात कही है। मैं सोचता हूँ कि क्या इन्द्रिय निग्रह संभव है? आखिर इन्द्रिय निग्रह या इन्द्रिय दमन क्या है? यह कैसे किया जा सकता है? क्या यह कार्य प्राकृतिक है?

उक्त प्रश्नों का उत्तर जानने के पूर्व 'इन्द्रिय' शब्द को जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य के शरीर में 10 द्वार होते हैं, या 10 अङ्ग ऐसे होते हैं जो मनुष्य के शरीर का अस्तित्व बनाये रखने के लिये कार्य करते हैं। इनमें से पाँच अङ्ग ज्ञानेन्द्रियों के रूप में तथा 5 अङ्ग कर्मेन्द्रियों के रूप में जाने जाते हैं। आँख, कान, नाक, जिह्वा तथा त्वचा ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनसे उन वस्तुओं, गैसों या पदार्थों तथा पिण्डों के संबंध में ज्ञान प्राप्त होता है जो शरीर के संपर्क में आते हैं या आने वाले होते हैं। जैसे यदि किसी जहरीली गैस का गुबार या बादल शरीर के संपर्क में आता है तो आँख उसे देखती है, नाक उसकी गंध सूंघती है, जिह्वा उसकी कड़वाहट आदि का अनुभव करती है, तथा त्वचा उसके स्पर्श को अनुभव कर मस्तिष्क को उसकी सूचना देती है। मस्तिष्क अपने संग्रहीत ज्ञान से कर्मेन्द्रियों को कार्य हेतु आदेशित करता है। आँख का कार्य देखना, कान का कार्य सुनना, नाक का कार्य सूंघना, जिह्वा का

Scanned with CamScanner

कार्य स्वाद लेना तथा त्वचा का कार्य स्पर्शानुभूति करना होता है। मस्तिष्क द्वारा आदेशित कार्य कर्मेन्द्रियों द्वारा किये जाते हैं। इनमें प्रमुख हाथ व पैर होते हैं, शेष में जननाङ्ग तथा गुदा आदि हैं।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँच कर्मेन्द्रियों के अतिरिक्त 'मन' को भी एक इन्द्रिय मान लिया गया है जबकि इस नाम से कोई दृश्य इन्द्रिय शरीर में नहीं होती। मनुष्य के भीतर कहीं से एक इच्छा का जन्म होता है उसी इच्छा के अनुरूप शरीर कार्य करता है। इस इच्छा का स्त्रोत या आधार 'मन' को माना गया है।

उक्त प्रकार से इन्द्रियों को जान लेने के उपरान्त द्वितीय प्रश्न आताहै कि इन्द्रिय दमन क्या है? 'दमन' का अर्थ है - दबा देना, कुचल देना। अतः 'इन्द्रिय दमन' का अर्थ हुआ 'इन्द्रिय को दबा देना। पुनः इसका तात्पर्य यह निकलता है कि इन्द्रिय द्वारा किये जाने वाले कार्य को दबा देना। या फिर इन्द्रिय को इस प्रकार निष्क्रिय कर देना जिससे वह अपना कार्य संपादित ही न कर सके। स्पष्टतः आँख देखने का कार्य, कान सुनने का कार्य, नाक सूंघने का कार्य, रसना रस लेने का कार्य तथा त्वचा स्पर्शानुभूति का कार्य न कर सके। या इन्द्रियों से संबंधित कार्य न लिये जाँय। इस प्रयास को इन्द्रिय दमन कहा जा सकता है। यदि इस प्रकार के इन्द्रिय दमन की बात कही जाती है या शिक्षा दी जाती है, तो यह शिक्षा घोर अप्राकृतिक कार्य का प्रयास करने संबंधी होगी तथा किसी भी सूरत में मान्य नहीं होगी। यदि मूत्र द्वार को रोक दिया जाय तथा मल द्वार को भी बंद कर दिया जाय तो पेट फूलने से कब्ज से तथा विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त होकर शरीर नष्ट हो जायेगा। यदि नयन देखने का कार्य बंद कर देंगे तो आने वाला सर्प शरीर को डस सकता है, कोई वाहन शरीर को कुचल कर नष्ट कर सकता है।

वास्तव में प्रकृति ने ये स्मस्त इन्द्रियाँ शरीर में इसलिये विकसित की हैं जिससे इनका उपयोग कर शरीर जिन्दा रह सके, उसका अस्तित्व बना रह सके। अतः जिस शरीर को मरना होगा वही इन इन्द्रियों का दमन करेगा। ये कहना अतिशयाक्ति न होगी कि शव की इन्द्रियाँ कोई कार्य नहीं करती हैं। अतः शव सबसे महान इन्द्रिय दमन करने वाला है। यह भी सत्य है कि अनेक वर्षों से कोमा में पड़े मरीज की श्वास तो चलती है परन्तु उसकी इन्द्रियाँ कार्य नहीं करती हैं। यह स्थिति भी ठीक नहीं है।

निश्चित रूप से मनीषी तथा महान प्रवचनकार इस प्रकार के इन्द्रिय दमन की बात नहीं करते हैं। इन्द्रिय दमन से उनका तात्पर्य इन्द्रियों के संतुलित उपयोग से है। किसी भी इन्द्रिय का अतिशय उपयोग न करना, उसके सुख के लिये पागलपन

Scanned with CamScanner

की हद तक प्रयास न करना ही इन्द्रिय निग्रह है या इन्द्रिय को वश में रखना है। इन्द्रिय का उपयोग उतना ही किया जाना चाहिये जितना स्वशरीर रक्षण तथा उसको स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक हो। अनावश्यक रूप से हठ करके किसी भी इंद्रिय को कष्ट भी नहीं पहुंचाना चाहिये।

एक हठयोगी प्रयाग में रहता था वह सूर्य को अनवरत देखता रहता था। जब तक भगवान भास्कर क्षितिज पर रहते थे वह उनकी ओर एक टक देखा करता था, फलतः वह अंधा हो गया। इंग्लैंड का महान कवि जान मिल्टन भी अंधा हो गया था उसके आलोचक रेले ने लिखा है - "Because Milton converted his nights into days, so Nautre converted his days into nights." मिल्टन बहुत पढ़ता था, बहुत लिखता था। वह आँखों का अत्यधिक उपयोग करता था। आखिरकार उसकी आँखें थक गयीं और उनकी ज्योति जाने पर उसकी महान कृतियाँ 'पैराडाइज लास्ट' 'पैराडाइज रिगेन्ड' और 'सैमसम एगोनिस्ट्स' उसकी लड़की की मदद से दुनिया को दखने को मिल पायीं।

हमारे गाँव के मंदिर में एक ठड़ेश्वरी बाबा आये थे। वे चौबीसों घण्टे खड़े ही रहते थे। मंदिर के बाहर लगे शमी के वृक्ष की एक डाल में एक झूला सा डाला था उन्होंने। रात्रि में अपने वक्षस्थल और सिर को इसी झूले के ऊपर टिका देते थे और जमीन पर खड़े ही खड़े सो लेते थे। नित्य क्रियायें मल-मूत्र त्याग, भोजन, पानी भी खड़े खड़े ही करते थे। उनके दोनों पैर असामान्य रूप से मोटे हो गये थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो 'हाथी पांव' का रोग हो गया हो। अब वे चाहकर भी बैठ नहीं सकते थे।

दुनिया में घटित होने वाले अपराधों में आधे से अधिक अपराध अत्यधिक लैङ्गिक सुख की कामना व उसकी पूर्ति संबंधी होते हैं। चाहे वह 'कीलर कांड' हो या फिर क्लिंटन का स्कैंडल हो, राजकुमारी डायना की बगावत हो या जैकलिन कैनेडी की हवश हो। ये सभी सेक्स की अत्यधिक पूर्ति की कामना से संबंधित कृत्य हैं। ये अपराध भले ही न हों परन्तु इनसे इनकी नेकनामी को धक्का अवश्य लगा है। बलात्कार, जारकर्म, छेड़खानी, स्त्री हरण आदि अनेकों अपराध जननेन्द्रिय सुख से संबंध रखते हैं। इन अपराधों को नियंत्रित करने के लिये लगभग हर देश ने कानून बनाये हैं और सबसे बड़ा कानून तो विश्व के समाज ने बनाया है वह है ''विवाह प्रथा''। इस प्रथा का सबसे बड़ा लाभ उन्मुक्त यौन शोषण पर रोक है। बलवान कमजोर का यौन शोषण न कर सके। अतः पूरे समाज के स्त्री व पुरुष जोड़ों के रूप में विवाह बंधन में बांध दिये जाते हैं जिससे वे अपनी वासना तृप्ति के लिये

Scanned with CamScanner

इधर उधर न भटकें। इसकी इच्छा न करें और उसकी पूर्ति के प्रयास में अपना समय नष्ट न करें। समाज को भी गंदा न करें। इस इन्द्रिय के निग्रह का अर्थ है - 'प्रकृति इच्छित सृष्टि निर्माण हेतु वर्ष में अति सीमित अवधि के लिये पत्नि पति का सम्भोगरत होना। या फिर वसन्त ऋतु के सुन्दर मौसम में विनोद हेतु केलि क्रीड़ा करना। इसमें पशुओं से शिक्षा ली जानी चाहिये। नग्न पशु शेर-शेरनी, गाय-बैल, कुत्ता-कुतिया, हिरण आदि प्रकृति निर्धारित ऋतु में ही वासना तृप्ति करते हैं। अपरिपक्व अवस्था में इससे दूर रहना भी इन्द्रिय निग्रह है। परन्तु आज ब्रह्मचर्य बेमानी जैसा हो गया है। रसनेन्द्रिय के सुख के लिये भी आज विश्व की लगभग 30 प्रतिशत फैक्ट्रियां अहर्निशि सुस्वादु भोज्य पदार्थ के उत्पादन में लगी हुई हैं। पेप्सी, कोकाकोला, हल्दीराम के उत्पाद और सबसे विशाल अनियन्त्रित मिठाई निर्माण व विक्रय स्थल रसना सुख के लिये हैं। छोटे से गाँव से लेकर महानगर तक में हलवाई की दुकानें मिल जायेंगी। चाट के ठेले को देखते ही जीभ से पानी टपकने लगता है। संध्या समय इन ठेलों का जाल सा बिछ जाता है। 'खाना खजाना' प्रोग्राम सिर्फ रसना सुख के लिये है। सोचता हूं हम प्रकृति से कितने दूर हो गये हैं। सेव, अनार, केला आदि फलों से अब हमें उतना सुख प्राप्त नहीं ोता जितना दोने में रखी चटपटी चाट या फुलकी से मिलता है।

मैं एक संत के पास जाया करता था। एक दिन वे किसी कब्ज के मरीज को बतला रहे थे - ''भगवान बेवकूफ थोड़े ही हैं जो उसने पच्चीसों तरह के अनाज बनाये हैं। वह चाहता तो एक ही अनाज बना देता जिसे सब खाते रहते। मनुष्यों का शरीर एक जैसा नहीं होता है। हर शरीर को हर अनाज या खाद्य पदार्थ 'सूट' नही करता। अतः हमें अपने शरीर के अनुरूप एक मुख्य खाद्य पदार्थ या अनाज का चयन कर लेना चाहिये और जीवन में उसी को खाना चाहिये। यदि दलिया सूट करता है तो वही खाना चाहिये। जो देखा वही खा लिया ऐसा नहीं होना चाहिये।'' डीजल गाड़ी उसी से अच्छी चलती है - मिट्टी के तेल से नहीं। अतः रसना का नियंत्रण ही उसका निग्रह है।

इन्द्रियों के सुख के लिये किये जाने वाले कार्यों पर लाखों पुस्तकें लिखी जा चुकी है और लाखों लिखी जा सकती हैं। परन्तु सबका सार यही होगा कि प्रकृति ने जिस मंशा से जिस इन्द्रिय का निर्माण किया है उसका उपयोग उतना ही नियंत्रित ढंग से किया जाय। अपने इन्द्रिय सुख से अपने शरीर को या दूसरे के शरीर को कष्ट न पहुँचाना ही 'इन्द्रिय दमन' है। यही 'इन्द्रिय निग्रह' है।

◆◆◆

Scanned with CamScanner

छेद

एक व्यक्ति अपने नाम 'छेदीलाल' से बहुत परेशान था। वह उसे बदलना चाहता था। किसी ने सलाह दी कि वह मुसलमान हो जायेगा तो नाम बदल जायेगा। अतः उसने इस्लाम धर्म कबूल कर लिया। उसका नया नाम रखा गया - 'सुराख अली'। अब वह फिर परेशान हो गया क्योंक नाम में 'छेद' से पीछा नहीं छूटा। फिर किसी ने कहा - ''ईसाई हो जाओ तो नाम बदल जायेगा।'' वह ईसाई हो गया तो नया नाम उसे दिया गया 'होलसन'। उसकी परेशानी और बढ़ गयी क्योंकि 'होल' याने 'छेद' फिर भी उसके नाम में रहा। उसने सोचा कि फिर उसका मूल नाम ही क्या बुरा है। अतः वह पुनः 'छेदीलाल' हो गया। 'पुनः मूषिको भव' जैसा हाल हुआ उसका।

सन्यास और आत्महत्या

सन्यास आत्महत्या का मानसिक स्वरूप है। आत्महत्या में जीव अपने शरीर को नष्ट कर देता है। यह कार्य वह स्वयं ही करता है। वह जहर खा लेता है, कोई नस ब्लेड से काट लेता है, ट्रेन के नीचे लेट जाता है, कुयें में, नदी या तालाब में कूद जाता है, रस्सी का फंदा बनाकर फांसी में लटक जाता है अथवा किसी ऊँची बिल्डिंग या मीनार से नीचे कूद जाता है, या फिर मिट्टी का तेल अपने ऊपर उड़ेल कर दियासलाई जला देता है। ये वे सामान्य तरीके हैं जिनसे मनुष्य स्वयं के शरीर को नष्ट कर देता है या वह आत्महत्या कर लेता है। यह कृत्य वह तब करता है जब उसके मन में अन्तिम रूप से यह विचार आ जाता है कि उसका यह शरीर उसके लिये या उसके माता पिता, भाई बहनों, पत्नी या बच्चों के लिये या उसके इर्द-गिर्द फैले समाज के लिये पूर्णतः अनुपयोगी है। जब वह यह मान लेता है कि इस शरीर से न तो वह दूसरों को कोई सुख या संतोष दे सकता है और न ही उसको स्वयं को इस शरीर से कोई सुख मिल सकता है। वह अपने शरीर को आइने में देखता है तो उसे नफरत होती है। वह स्वयं से भी प्रेम नहीं करता है। वह दूसरों से भी प्रेम नहीं करता है। न ही दूसरे उससे प्रेम करते हैं। यह स्थिति एक प्रकार से नैराश्य या हताशा की होती है। पूर्ण हताशा

जो आत्महत्या या सन्यास की जननी है, कब आती है?

उत्तर है कि यह भिन्न भिन्न व्यक्तियों के लिये भिन्न स्थितियों में आती है। ये भिन्न स्थितियाँ उसकी सहनशीनता तथा आत्मबल पर निर्भर करती हैं। दूसरे शब्दों में जिस व्यक्ति में जितना कम आत्मबल होगा वह उतनी ही जल्दी आत्महत्या या सन्यास की स्थिति में आ जायेगा। एक गरीब विद्यार्थी का मिशन हाई स्कूल पास करना होता है। इसके लिये उसके माता पिता पैसे जुटाते हैं, उसे ड्रेस, किताबें, फीस और ट्यूशन देते हैं। अब यदि वह फेल हो जाता है तो यदि आत्मबल उसमें कम है, वह माता का दुःख, पिता की आँखें, दूसरों का उपहास सहन नहीं कर सकता तो यह फेल की घटना ही उसके लिये पूर्ण हताशा का कारण बन सकती है। इसके विरुद्ध एक दूसरा विद्यार्थी जिसमें आत्मबल ज्यादा है वह घर आकर माता पिता से कह सकता है कि अब वह स्वयं मेहनत करके पैसे जुटायेगा और हाईस्कूल पास होकर दिखायेगा। लड़कों के उपहास से वह आँखें फेर लेता है, उन्हें कोई तीखा उत्तर दे देता है। ऐसा गरीब लड़का पूर्ण हताशा को प्राप्त नहीं होगा। किसी व्यवसायी पर शासन छापा डालता है और उसकी अवैध कमाई की सम्पत्ति जप्त कर लेता है, उसे जेल में डाल देता है तो वह पूर्ण हताशा की स्थिति में आ सकता है। महाराणा प्रताप ऐसे ही किन्हीं क्षणों में अकबर को उसकी आधीनता का पत्र लिख बैठे थे। अतः संपूर्ण हताशा आत्मबल की कमी पर निर्भर करती है। इस स्थिति तक पहुंचने के पूर्व वह जितना जीवन जी चुका होता है, उतने जीवनकाल में उसने जो भी कर्म किया होता है उसने जिसको भी अपना प्रेम दिया होता है या जो भी प्रेम पाया होता है तथा उसने जो भी अपने सपने के संसार का ताना बाना बुना होता है वह सब छिन्न-भिन्न हो जाता है। अचानक उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह झूठ में जी रहा था, अपने संसार को जैसा उसने माना था वह वैसा नहीं था। लोगों के प्रेम दिखावा थे। वे स्वार्थ सिद्धि के लिये थे। उनकी मधुर बातें चाटुकारिता थीं। परिवार तो उसका था ही नहीं। अपने इस जीवनकाल में अपने संसार की रचना के लिये उसने जो भी पाप किये होते हैं, उन पापों का पछतावा उसे स्वयं से नफरत करवा देता है यदि वह यह मान लेता है कि प्रायश्चित स्वरूप कोई तप संभव नहीं है। पाप उसे जीने नहीं देते। बाहर उसे कोई अपना जैसा दिखाई नहीं देता। तो उसे अपना जीवन उद्देश्य विहीन व निरर्थक तथा स्वयं पर बोझ लगने लगता है। ऐसी मानसिक स्थिति का व्यक्ति कोई सहारा न पाकर आत्महत्या कर लेता है। पूर्ण हताशा आत्महत्या की जनक है।

इस संपूर्ण हताशा की स्थिति में पहुंचने पर यदि व्यक्ति को यह लगता है कि

Scanned with CamScanner

वह इस स्वप्निल संसार को तथा अपने भूतकाल को यदि एक दुःस्वप्न की भांति भूल जाये और एक नई दुनिया में प्रवेश कर जाये तो अभी भी उसके जीवन और शरीर का कुछ उद्देश्य हो सकता है, तो वह अपनी उस दुनिया के हर व्यक्ति, हर चीज, हर घर, हर याद को पीछे छोड़ कर वहाँ से कहीं दूर चला जाता है। यह स्थिति सन्यास कहलाती है। इस भावना को वैराग्य कहते हैं। उसे किसी से मोह नहीं रह जाता है। उसकी अन्तरात्मा के किसी कोने में उन चीजो के प्रति लगाव नहीं रह जाता है। वैराग्य की भावना सन्यास की ओर ले जाती है। एक सन्यासी तो घर से दूर इसलिये चला जाता है ताकि कहीं ऐसा न हो कि किसी प्रलोभनवश, किसी दिखावे के कारण वह फिर उसी दुनिया में लौट आये और अपनी आशायें निराशायें वह फिर उसी संसार से जोड़ दे। सन्यासी का घर से दूर चला जाना एक प्रकार की उसकी कमजोरी है। गेरुआ वस्त्र, तिलक, कमंडल तो मात्र एक नई दुनिया की शुरुआत के सिम्बल या चिह्न हैं। यह उसके पूर्ण वैराग्य में कुछ कमी को प्रदर्शित करते हैं। उसकी पूर्ण हताशा में कुछ कमी को दर्शाते हैं।

यदि इस वैराग्य की भावना में संपूर्णता हो, यदि हताशा संपूर्ण हो तो फिर वैरागी घर में रहे या दूर चला जाय इससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। ऐसा वैरागी घर में रहते हुये भी सन्यासी होगा।

स्पष्ट है कि सन्यास गेरुआ वस्त्र से नहीं होता है, सन्यास घर से दूर जाने से नहीं होता है। यह तो मन से होता है। फिर वह कहीं भी रहे उसका मन सन्यासी होगा तथा वह व्यक्ति भी सन्यासी होगा।

सन्यासी हो जाने के बाद मनुष्य समरस हो जाता है फिर उसे आदमी आदमी में फर्क नजर नहीं आता है। अमीर गरीब, ऊँच-नीच, परिवार, पड़ोस आदि सब एक समान लगते हैं। एक सन्यासी सभी से समान प्रेम करता है। सभी उसकी दया व सहानुभूति के पात्र होते हैं। सन्यासी सभी को सन्मार्ग बताता है, जीवन जीने की कला बताता है। मीरा, भक्त रैदास, संत तुलसी, चैतन्य महाप्रभु, आदि शंकराचार्य, महात्मा बुद्ध, महावीर, आचार्य विद्यासागर सभी इसी प्रकार के सन्यासी हैं। कुछ ने घर छोड़ा है। कुछ ने नहीं। यदि आत्महत्या करने वाला मनुष्य आत्महत्या न करे, उस झटके वाले क्षण को पार कर जाये, किंचित आशा, किसी का भूला बिसरा प्रेम उसे रोक दे तो वह व्यक्ति भी एक सन्यासी के रूप में आ जायेगा और समाज का कल्याण करेगा।

✦✦✦

Scanned with CamScanner

स्मित हास्य

एक बार स्कूल में अध्यापक ने बच्चे से पूँछा - ''बेटे, तुम्हारे पापा क्या काम करते हैं?''
उस बच्चे ने सहज भोलेपन से उत्तर दिया - ''जो भी मम्मी कहती हैं, वही करते हैं।''

प्रेम और कलह

प्रेम की बहुत बात होती है। धार्मिक नेता, राजनैतिक नेता, सामाजिक कार्यकर्ता, पारिवारिक बुजुर्ग - सभी प्रेम से रहने की सलाह देते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि सभी लोग स्त्री व पुरुष के मध्य प्रेम के विरोधी होते हैं। किसी लड़का व लड़की में प्रेम हो जाता है तो बाकी सब उनके दुश्मन हो जाते हैं। यह शायद 'जलन' की दुश्मनी है या फिर स्वार्थ की। क्योंकि जब कोई प्रेमी अपना सारा प्रेम किसी एक को दे देता है तो फिर अन्य के लिये, समाज के लिये उसके हृदय में इसका अभाव हो जाता है। इसीलिये अन्य लोग जो उस प्रेमी से प्रेम की चाह रखते हैं, उससे डाह करने लगते हैं क्योंकि उन्हें उससे प्रेम नहीं मिल पाता है। सभी कृष्ण नहीं हो सकते। सभी सत्य साईं नहीं हो सकते जो अपना प्रेम सबको देते हैं।

मैं यहाँ प्रेम की कमी से होने वाले झगड़े में रुचि रखता हूँ। वास्तव में परिवार में, जातियों में, समाज में, देश में, विदेश में, जितने भी झगड़े होते हैं वे प्रेम की कमी से होते हैं। यदि इन समस्त विषयों में प्रेम की कमी की मात्रा का विश्लेषण किया जाये तो एक विशाल ग्रन्थ की रचना हो जायेगी। अतः मैं छोटे झगड़ों का विश्लेषण करूंगा जो प्रेम की कमी से होते हैं। ये हैं - सास-बहू का झगड़ा और पति-पत्नी का झगड़ा।

इंदिरा मेनका हों, या ग्राम्य कहानियों की सास बहू हों या फिर मध्यम वर्ग की सास बहू हों - सभी आपस में झगड़ती हैं और परिवार भोर होते ही टेंशनमय वातावरण में डूबने लगता है। ननद स्कर्ट में बाथरूम जाते समय कनखी से भइया भाभी के बंद कमरे को देखती है तो सास सिगड़ी या गैस जलाते समय, गोल-गोल आंखें किये, फूले गाल लिये सामान्य से कुछ ज्यादा ही खाँसती है। और फिर

Scanned with CamScanner

कसमसाती बहू एक झटके से पति के आलिंगन से अलग हो, अलसाई आँखों से घड़ी की ओर देखकर, रजाई तिरछे से बगल कर, पलंग के नीचे खड़ी हो पेटीकोट के ऊपर जल्दी-जल्दी साड़ी लपेटने लगती है। फिर अपने ब्लाउज में पड़ी सिलवटों को ठीक करती है। अपने दोनों हाथों से बाल पीछे को करती है और मुंह को हलका सा झटका देते हुए बड़ा सा लपेटा जूड़ा बांध लेती है। शीशे में एक उजड़ी, उखड़ी निगाह डालते हुए कुछ सिकुड़ी सिमटी निगाहें लिये खट की आवाज से दरवाजा खोलकर बाहर आती है। किचन में जाकर माँ जी 'सास' के इर्द गिर्द फैले बर्तन समेटने लगती है। चाय के कप माँ जी के पास रख देती है और फिर उनके हाथ से चाय का भगौना ले चाय छानने लगती है। कहती है - ''लाइये माँ जी मैं बना देती हूँ''। माँ जी चाय छोड़ दूसरे कमरे की ओर चली जाती हैं। बहू ट्रे में रखकर सबको चाय देती है। कैसा लगता है इस घटना को देखकर? क्या सास बहू में बहुत प्रेम है? उत्तर है 'नहीं'। अन्दर एक कसमसाहट है दोनों में। एक आजादी की, एक अधिकार की। वास्तव में इसकी जड़ में प्रेम की कमी है।

सास बहू के झगड़े का एक गणितीय समीकरण है। माना कि हर मनुष्य में प्रेम के सौ कण होते हैं जो प्रेम उत्सर्जित करते रहते हैं। तो फिर लड़के में भी प्रेम के सौ कण हुए जो प्रेम पैदा कर रहे हैं। वह लड़का जब शिशु होता है तो माँ से दूध मांगता है, मचलता है, रोता है, माँ के आँचल में मुंह घुसेड़कर उसका स्तनपान करने लगता है और फिर तृप्त निगाहों से माँ की आँखों में आँखें डाल मुस्कराता है। इस समय उसके पूरे सौ कण माँ के प्रति प्रेम का उत्सर्जन करते हैं। दूसरी कोई स्त्री इसमें हिस्सा नहीं बटाती है। शिशु से किशोर और किशोर से युवक बना लड़का स्त्री जाति में केवल माँ को ही अपना प्रेम देता है और प्रेम पाता है। छोटी-छोटी मूँछें, और बिखरी-बिखरी दाढ़ी लिये लड़का सिर्फ माँ से ही प्रेम करता है। उसे माँ से प्रेम, खाना, बिछी चारपाई, धुले कपड़े, मनुहार, प्रेम की झिड़की तथा उसकी प्रतीक्षा करती दृष्टि मिलती है। कोई दूसरी स्त्री उसके जीवन में नहीं होती।

फिर आता है वह क्षण जब लड़के के प्रेम के सौ कण एक झटके से बिखर जाते हैं। लड़के का विवाह हो जाता है और आती है एक नई नवेली, बनारसी साड़ी में सजी, मेंहदी लगाये, सिकुड़ी सिमटी, माथे में टीका और भौहों में तिरछापन लिये, रतनार कँटीले नयन लिये, लचीली बलखाती कमर वाली एक दुल्हन। लड़का उसे छू सकता है, उसके अंग प्रत्यंग को सहला सकता है, उसकी आँखों में आँखें डाल अपना प्रेम उस पर उड़ेल सकता है। वह दुल्हन रात्रि के तनहा सफर में उसकी अंकशायिनी बन उसका साथ देती है। सास के कार्य जैसे प्रेम, खाना, कपड़े आदि

तो वह करती ही है वह उसे ऐन्द्रिक सुख के उस मुकाम में भी ले जाती है जो उस लड़के के लिये एक नवीन अनुभव होता है।

तो अब आ जाती है एक और स्त्री लड़के के जीवन में जो उसकी माँ से कुछ अधिक उसे दे रही है। परन्तु गणित वही पुरानी ही है। उसके प्रेम की सीमा वही है। लड़के के पास प्रेम के सिर्फ सौ कण ही हैं। ये बढ़ नहीं सकते। अतः अब ये बंट जाते हैं और वह भी एक झटके के साथ। शादी की तिथि और फिर सुहागरात। यह सुहागरात भी बड़ी अजीब रात होती है। लड़के के सौ कण इसी रात बिखर जाते हैं। इसी से इस रात्रि के बाद का भोर बिखर जाता है। इस भोर में माँ को आभासित हो जाता है कि अब लड़के की निगाहें बदल गई हैं। उसके सौ प्रेम कणों में से 75 कण बहू की ओर चले गये हैं और बचे हैं उसके लिये सिर्फ 25 कण। इन 25 कणों का प्यार पाती माँ अपनी जिन्दगी के दिन सरकाने लगती है। ऊपर से बहू के प्रति प्रेम का ढोंग करती है परन्तु उसके हृदय में यह एहसास लगातार रहता है कि मेरे लड़के के 75 प्रेम कण इसी स्त्री ने मुझसे छीने हैं। यह मेरी प्रतिद्वन्दी है। अब मेरा लड़का मेरी ओर उन निगाहों से नहीं देखता जिनसे पहले देखा करता था। उसका पुत्र अब छिन गया है। और छीना है एक कम उम्र की छोकरी ने जिसने न तो उसे पैदा किया है, न उसकी गीली रातें देखी हैं, न उसकी बहती नाक पोंछी है। यह तो आयी और उसके पट्ठे लड़के को उससे छीनकर वह प्रेम पाने लगी जो उसे कभी नहीं मिला। बस यही कसक, यही जलन सास और बहू के बीच झगड़े की जड़ है। आवश्यकता है झगड़े की जड़ इस मूल बात को समझने की। शेष घटनायें तो मात्र झगड़े, चिड़चिड़ाहट, तनाव आदि के लिये बहाना मात्र हैं। प्रेम की कमी की धरती पर छोटी से छोटी भूल चूक भी विकराल रूप धारण कर लेती है और अन्त होता है सास बहू के झगड़े का -अलगाव में। घर के बीच दीवार खिंच जाती है और एक से दो चूल्हे हो जाते हैं।

गणित के इसी समीकरण से पति व पत्नी के मध्य झगड़े को भी सिद्ध किया जा सकता है। सिद्धान्त यही है। माना पत्नी के पास सौ कण हैं। सुहागरात में प्रथमबार जब वह अपने पति से मिलती है तो सारे प्रेम कण उस पर न्यौछावर कर देती है। पति को ऐसा प्रतीत होता है मानो विश्व का सारा सुख उसी को प्राप्त हो गया हो। जीवन के प्रथम अनुभव। वह मस्त हो जाता है। परन्तु धीरे-धीरे जब उत्कंठा शान्त हो जाती है, परदा उठ जाता है तो फिर रोजमर्रा की जरूरतें याद आती हैं और विनोद (मनोरंजन) की परिणति विनोद (नवजात शिशु का नाम) में हो जाती है, पति का एक प्रतिरूप पत्नी के सामने आ जाता है तो पत्नी के सौ कण डिलीवरी चेम्बर में ही बिखर जाते हैं। यह भी एक झटके से होता है। पति को पता भी नहीं

Scanned with CamScanner

पड़ता है और उसकी प्रेम रिसीविंग कोठरी 3/4 खाली हो जाती है। पत्नी के 75 प्रेम कण नवजात शिशु के लिए प्रेम उत्सर्जित करने लगते हैं। पति के हिस्से में रह जाते हैं सिर्फ 25 कण। फिर न घर में उसकी प्रतीक्षा होती है, न मुस्कराते बदन से उसकी विदाई होती है। उसकी चारपाई कभी बिछती है कभी नहीं। चुम्बन, सारे शिशु के हिस्से में चले जाते हैं, आलिंगन शिशु का होता है। धुले कपड़ों के लिये पति को स्वयं गठरी बांधकर धोबी के यहां जाना पड़ता है और दफ्तर जाते समय कभी तो सिर्फ डबलरोटी खाकर ही जाना पड़ता है। पति को तो अब पत्नी से 25 प्रेम कण ही मिलते हैं। कभी एक मुस्कुराहट के रूप में तो कभी झिड़की के रूप में। शिशु उसका प्रतिद्वन्दी होता है। परन्तु पति उससे तो लड़ नहीं सकता है अतः झगड़ा प्रारम्भ होता है पति व पत्नी के मध्य। वही पुरानी दास्तान। तुमने टूटी बटन नहीं टांकी। तुम्हे चाय देने का भी ध्यान नहीं है, घर कितना गन्दा है, तुम्हें खाना बनाना नहीं आता आदि। और पत्नी के जवाब - मैं तुम्हारी अर्द्धांगिनी हूँ नौकरानी नहीं, खुद टांक लो। बच्चे को देखूँ या चाय बनाऊँ- खुद क्यों नहीं बना लेते। और यह, कि मेरी बजाय किसी महाराजिन से शादी क्यों नहीं किया जो अच्छा खाना बनाती और तुम्हे खिलाती आदि। परन्तु जड़ में क्या है इन झगड़ों की? वही प्रेम की कमी। प्रेम के सौ कणों का बँटवारा। इसका एक ही उपाय है। - कम प्रेम कणों के साथ ही जीना। इसी की आदत डालना। यही कहलाता है एडजेस्टमेंट।

◆◆◆

स्मित हास्य

नन्हा बच्चा वैज्ञानिक से - "अंकल! कल मैं बाजार से साबुन की टिकिया लाया था। जब पतलून धोयी तो सिकुड़कर छोटी हो गयी है, बताइये मैं क्या करूं?"

वैज्ञानिक (बहुत सोचकर) - "तुम उस साबुन से अपनी टांगे भी धो लो।"

आज की व्यंग्यात्मक परिभाषायें और प्रश्नोत्तर

1. जीवन :- ज्ञानेन्द्रियों से जाँच परख करके कर्मेंद्रियों से काम करना ही जीवन है। शेष सब आलस्य और परजीवी होने की निशानी है, दूसरे का शोषण है, उसकी चोरी और उस पर डाका है।

2. प्रजातंत्र :- गरीबों और अल्पबुद्धि वालों को बरगलाकर उन्हें दिवा स्वप्न दिखाकर उनका शोषण करने की तथा उन पर शासन करने की एक व्यवस्था है।

3. शिक्षानीति :- देश के नवयुवकों को क्रियात्मक, जीवनोपयोगी ज्ञान से दूर रखकर, किताबी ज्ञान के स्तर के अनुसार उन्हें डिग्रियां देकर, उन्हें निकम्मा बनाकर, उनमें बेरोजगारी की समस्या पैदा कर, इस समस्या के निराकरण के लिये आश्वासन देते हुये देश की युवा शक्ति को अपने राजनैतिक लाभ के लिये उपयोग करने की सरकारी नीति है।

4. लोक सेवा आयोग :- रोजगार की तलाश में भटकते स्नातकों के अन्दर हीन भावना पैदा करने के लिये खेले जा रहे नाटक का वैधानिक मंच है।

5. आरक्षण :- देश के साथ एक धोखा है, एक धीमा जहर है जो भारतीय समाज को दिया जा रहा है। देश की प्रतिभा को विदेशों में धकेल देने का यह एक तरीका है। बुद्धिविहीन एक खोखला देश कब तक अपनी आजादी और अपनी संस्कृति को बरकरार रख सकेगा।

Scanned with CamScanner

प्रश्नोत्तर

1. प्रश्न :- पर्वत स्थिर क्यों रहते हैं?

उत्तर :- क्योंकि उनके पेट नहीं होता।

2. प्रश्न :- आदमी और कुत्ता में क्या अन्तर है?

उत्तर :- आदमी कुत्ता हो सकता है और उसकी तरह भौंक भी सकता है। कुत्ता कभी आदमी नहीं बन सकता। वह वफादारी कभी नहीं छोड़ सकता।

✦✦✦

Scanned with CamScanner

लेखक का संक्षिप्त परिचय

मेरा जन्म ग्राम - इचौली, जिला हमीरपुर, उत्तरप्रदेश में भाद्रशुक्ल 9 संवत् 2002 दिनांक 16 सितम्बर 1945 को एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। जन्म के कुछ मास उपरान्त ही ग्राम - खजुरिहा पहरा, जिला - महोबा (वर्तमान) उ.प्र. में आकर मेरे माता-पिता यहीं के निवासी हो गये। मेरा बचपन यहीं बीता। पिता का नाम - रामगोपाल मिश्र व माता का नाम - फूलकली मिश्रा है। पिता पटवारी थे। 1954 में उनका स्वर्गवास हो गया। माता जीवित हैं एवंस्वस्थ हैं। मैंने ग्राम में, बाँदा, अतर्रा तथा कानपुर में शिक्षा प्राप्त की है। इसमें मेरे मामा श्री रामसेवक पाण्डे का अत्यधिक योगदान है। कानपुर के वी.एस.एस.डी. कॉलेज से इंग्लिश में एम.ए. की डिग्री सन् 1964 में प्राप्त कर मैंने एक वर्ष अध्यापन कार्य किया। फिर 6 माह स्वरोजगार करके 1966 की जनवरी में म.प्र. में विक्रयकर निरीक्षक के पद पर नौकरी में आ गया। 39 वर्ष की सेवा के उपरान्त जनवरी 2005 में वाणिज्यिक कर अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त हुआ। वर्तमान में सतना (म.प्र.) में निवास कर रहा हूँ।

मेरी जीवन संगिनी अभिलाषा मिश्रा हैं। हमारा विवाह मई 1961 में हुआ था। हमारे चार पुत्रियांतथा एक पुत्र हैं। सभी विवाहित हैं : अनीता-नवीन अवस्थी, मनीषा (मन्ना)-संदीप तिवारी, रीता (गुड़िया)-विकास अवस्थी, रीना-प्रवीण दुबे हमारी पुत्रियाँ व दामाद हैं। सुनीलदत्त मिश्र-निशा मिश्रा पुत्र व पुत्रवधु हैं। एक मधुर, कोमल, भोला नाती भी है। नाम है - शुभदत्त मिश्र। अपनी संतानों एवंपरिवार के साथ सभी प्रसन्न एवंसुखी हैं।

भाई ब्रह्मदत्त मिश्र ग्राम में तथा विवाहित बहन विमला घाटमपुर (कानपुर) में रहती हैं। मेरी रुचि पठन, पाठन, चिंतन, मनन में सर्वदा रहती है। मेरे भावुक हृदय में कोमल भावनायें तो हमेशा रही हैं मैं उन्हें लिखकर संजोता भी रहा हूँ परन्तु जीवन संघर्ष से कुछ फुरसत सी महसूस कर उन्हें एकत्र कर पुस्तक का रूप देने का मौका अब मिला है। अत: यह पुस्तक अब आपके करकमलों में है।

- हरिहरदत्त मिश्र

'हरि निकेतन' रामाकृष्णा। 'बचपन' स्कूल के पास
भरहुत नगर कॉलोनी, सतना (म.प्र.)

Scanned with CamScanner